चन्दामामा
मई १९६८

मई १९६८

★

## विषय - सूची



★


एक प्रति ०-७५ पैसे

वार्षिक चन्दा रु. ९-००

# कोलगेट से दिनभर दुर्गंधमय श्वास से मुक्त रहिए और दन्त-क्षय को रोकिए!

क्योंकि: एक ही बार ब्रश करने से कोलगेट डेन्टल क्रीम ८५ प्रतिशत दुर्गन्ध प्रेरक और दंत क्षयकारी जीवाणुओंको दूर कर देता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो गया है कि कोलगेट १० में से ७ मामलों में दुर्गन्धमय सांस को तत्काल दूर कर देता है और खाना खाने के तुरन्त बाद कोलगेट विधि से ब्रश करने पर दन्त चिकित्सा के समस्त इतिहास में पहले के किसी भी समय की तुलना में अधिक व्यक्तियों का अधिक दन्तक्षय दूर होता है। केवल कोलगेट के पास ही यह प्रमाण है।

बच्चे कोलगेट से अपने दांतों को नियमित रूप से ब्रश करने की आदत आसानी से पकड़ लेते हैं क्योंकि इसकी देर तक रहने वाली पिपरमेंट जैसी खुशबू उन्हें प्यारी होती है।

नियमित रूप से कोलगेट द्वारा ब्रश कीजिये ताकि इससे आपकी सांस अधिक साफ़ और ताजा तथा दांत अधिक सफ़ेद हों।

यदि आपको पाउडर पसंद हो तो कोलगेट टूथ पाउडर से भी ये सभी लाभ मिलेंगे... एक डिब्बा महीनों तक चलता है।

...सारी दुनिया में अधिक से अधिक लोग किसी दूसरी तरह के डेंटल क्रीम के बदले कोलगेट ही खरीदते हैं

DCG. 35 H
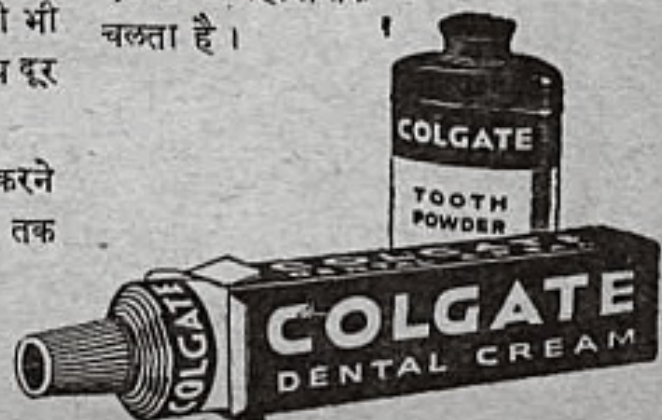
Chandamama
Press
VADAPALANI
MADRAS 26
OFFERS YOU...
FINEST PRINTING.-
Equipped with
PHOTO GRAVURE
KLIMSCH CAMERA
VARIO KLISCHOGRAPH-
-BLOCK MAKING
and a
host of others....

२५,००० रु.
के नगद इनाम
जीतिये
डाबर
आँवला केश तैल
इनामी प्रतियोगिता
में भाग लीजिये
डाबर
आँवला केश तैल
AMLA HAIR OIL

अपने घर को रमणीय और मनोहर बनाने
अधुनातन और नवीन बनाये रखने

## सदा हम से पूछिये।

# AMARJOTHI FABRICS

**BEDSPREADS - FURNISHINGS - FANCY TOWELS**

बनानेवाले :
**अमरज्योति फेब्रिक्स,**
पो. बा. नं. २२, करूर (द. भा.)
शाखाएँ : बंबई - दिल्ली

मद्रास के प्रतिनिधि:
**अमरज्योति ट्रेडर्स,**
११, गोडाउन स्ट्रीट, मद्रास - १
दूरभाष : ३४८६५

---

**DRINK**

# KOSY-KOOLA

**DELICIOUS SOFT DRINK**

**TABLETS**

**पीजिये**

# कोसी-कोला

सुस्वाद मन्द पेय
**टिकियां**

**by: KOSY-KOOLA PRIVATE LIMITED**
NAGAR, JOGESHWARI (WEST) BOMBAY-60 (NB)

आयुर्वेद सेवाश्रम की
महान भेंट
सेवाश्रम उत्पादन
उदयपुर
जीतिए!
१,००,००० रुपये
(एक लाख रुपये) १,१०० से भी ज़्यादा इनाम
इनमें से कोई भी एक शानदार इनाम जीतिए।
पहला इनाम: एम्बैसेडर कार
अन्य इनाम
४ वेस्पा स्कूटर
५ आल्विन रेफ्रिजरेटर
७ बुश रेडियो
१०० बजाज प्रेशर कुकर
Rs. 30 VOUCHER

खोज की दहलीज़ पर

# चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

इस अंक में प्रकाशित 'सच्चा शिष्य' नामक 'वेताल कथा' यह सूचित करती है कि तात्विक दृष्टिकोण केवल विचारात्मक होने से पर्याप्त नहीं बल्कि इसे आचरण में लाने की ज़रूरत है !

अंध विश्वासों में परिवर्तन लाना इतना सरल नहीं जितना हम सोचते हैं। खासकर उन विश्वासों को बल प्रदान करनेवाले वातारण में परिवर्तन लाना और भी कठिन है। यह बात 'शनि-देवता' कहानी द्वारा साबित होती है !

वर्ष : १९ मई १९६८ अंक : ९

# भारत का इतिहास

अंग्रेज़वालों और मैसूर सुलतान के बीच जब पहली बार लड़ाई हुई तब निजाम ने तात्कालिक रूप से ब्रिटीशवालों का साथ देना छोड़ दिया, लेकिन फिर १७६८ फरवरी २३ को मछलीपट्टणम के पास अंग्रेज़वालों से एक और शांति की संधि कर ली। इस संधि के अनुसार यह निर्णय हुआ कि निज़ाम उत्तर सरकार ज़िले अंग्रेज़ों को देगा और उसके बदले इंग्लीश ईस्ट इंडिया कंपनी निज़ाम को हर साल ९ लाख रुपये चुकायेगी। कुछ समय बाद अंग्रेज़वालों ने गुंटूर ज़िले को निज़ाम के भाई बसालत जंग को आजीवन भोगने के अधिकार के साथ सौंपा और निज़ाम को चुकाये जानेवाला धन नौ लाख के बदले सात लाख कर दिया।

मद्रास के उस समय के गवर्नर रंबोल्ड ने निज़ाम पर यह आरोप लगाया कि निज़ाम ने अपनी सेना में फ्रेंच सिपाहियों को भर्ती करके १७६८ के समझौते का उल्लंघन किया है और गुंटूर को बसालत जंग से वापस लेकर निज़ाम को रुपये चुकाना भी बंद कर दिया। लेकिन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने इस कार्य का विरोध किया। तो भी निज़ाम अंग्रेज़ों का विरोधी बना रहा। इसका एक प्रबल कारण यह भी है कि बहुत ही कठिन हालत में अंग्रेज़वालों ने रघोबा से दोस्ती कर ली थी। इस क्रोध से अंग्रेज़ों के विरुद्ध हैदर और महाराष्ट्रों के साथ दोस्ती किये हुए निज़ाम को हेस्टिंग्स ने फोड़ दिया। इसके लिए उसने बसालत जंग को गुंटूर वापस दे दिया।

सन् १७८३ में बसालत जंग मर गया। गुंटूर ज़िला वापस करने के लिए अंग्रेज़ों ने निज़ाम से पूछा। गुंटूर ज़िला निज़ाम

७९. इंग्लीश ईस्ट इंडिया कंपनी के अत्याचार

और अंग्रेज़वाले दोनों के लिए आवश्यक था। गुंटूर न रहे तो निज़ाम को समुद्र तट पर बिलकुल अधिकार न होगा। अंग्रेज़वालों के उत्तर और दक्षिण के प्रदेशों को गुंटूर ही मिलानेवाला था। कुछ संकोच के बाद निज़ाम ने गुंटूर को अंग्रेज़ों को देना स्वीकार किया और टीपू ने उससे जो प्रदेश हड़प लिये थे, उन्हें वापस लेने में अंग्रेज़ों की मदद माँगी।

अंग्रेज़ गवर्नर जनरल (कार्नवालिस) कठिनाइयों में फँस गया। क्योंकि उन प्रदेशों पर मैसूर के अधिकारों को अंग्रेज़वालों ने दो संधियों में स्वीकार कर लिया था। तो भी मैसूर के साथ युद्ध ठन जाय तो मदद करनेवालों की भी ज़रूरत होती है, इसलिए गवर्नर जनरल ने निज़ाम को सैनिक सहायता देने की स्वीकृति दी। तीसरे मैसूर के युद्ध में निज़ाम की सेना अंग्रेज़ों के पक्ष में लड़ी।

* * *

रुहेलखण्ड नामक उपजाऊ प्रदेश अवध के उत्तर-पश्चिम में हिमालय तक फैला था। उसकी आबादी ६० लाख थी। उसके शासक रुहेलों के नेताओं के दल का अधिपति हाफिज़ रहमत खाँ था। अवध नवाब रुहेलखण्ड को हड़पना चाहता था। लेकिन दोनों महाराष्ट्र के डर से हिम्मत न कर पाते थे। इसलिए रुहेलों ने अवध के नवाब शुजा उद्दौला से समझौता कर लिया। इसके अनुसार महाराष्ट्रवाले रुहेलखण्ड पर हमला कर बैठे तो अवध नवाब को उन्हें भगाना था। इस काम में मदद पहुँचाने के लिए रुहेलों को ४० लाख रुपये चुकाने होंगे।

इस समझौते के दूसरे साल (१७७२) में महाराष्ट्रों ने रुहेलखण्ड पर हमला किया। ब्रिटीश और अवध के सैनिकों ने उनको भगा दिया। लेकिन रुहेलों ने

शुजा उद्दौला को ४० लाख रुपये नहीं चुकाये। इस बहाने शुजा उद्दौला ने ब्रिटीश सेना की मदद से रुहेलखण्ड पर हमला करके १७७४ अप्रैल में विजय पायी। इससे रुहेलखण्ड का बहुत-सा हिस्सा अवध में मिलाया गया।

इस विषय में गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स के निर्णय की ब्रिटीश पार्लियामेंट में कड़ी आलोचना हुई। वाराणसी के राजा चैतसिंह के विषय में हेस्टिंग्स का व्यवहार और भी नीचतापूर्ण था। चैतसिंह अवध के नवाब का सामंत था। उसने १७७५ जुलाई में इंग्लीश कंपनी के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार वह कंपनी के अधिकार को स्वीकार करते हुए हर साल कंपनी को २२ १/२ लाख रुपये दिया करेगा।

१७७८ में जब अंग्रेज़ों और फ्रेंचवालों के बीच युद्ध छिड़ा तब हेस्टिंग्स ने चैतसिंह से ५ लाख रुपये और ज्यादा माँगा। चैतसिंह ने बिना किसी प्रकार के विरोध के बड़ी प्रसन्नता के साथ दिया। लेकिन हेस्टिंग्स बार-बार और ज्यादा धन माँगता गया, चैतसिंह भी देता गया। लेकिन बाद को वह हेस्टिंग्स की इच्छा के अनुसार घुड-सवार दल न दे पाया। इसको बहाना बनाकर हेस्टिंग्स खुद वाराणसी गया और चैतसिंह को गिरफ़्तार कराया।

इसे देख चैतसिंह के सिपाही क्रोध में आये और अचानक विद्रोह करके हेस्टिंग्स के कई सिपाहियों और तीन सेनापतियों का वध किया। चैतसिंह जानता ही न था कि ऐसी घटना होगी। इसलिए निर्दोषी होकर भी चैतसिंह अपने पद को खोकर ग्वालियर में जा छिपा।

हर साल ४० लाख रुपये ब्रिटीश कंपनी को चुकाने की शर्त पर, चैतसिंह के पद को अंग्रेज़ों ने उसके भतीजे को सौंपा।

# दुष्ट का त्याग

पुराने ज़माने में एक राजा था। उसके एक ही लड़का था। राजा ने उसे बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा। राजकुमार के दो दोस्त थे। एक बनिये का लड़का था और दूसरा पुरोहित का लड़का था। तीनों ने एक ही गरु के पास विद्या सीखी। लेकिन तीनों विद्या में कच्चे थे। वे हमेशा शरारत करते, अपने अपने पिताओं को बदनाम करने लगे।

राजा ने एक दिन राजकुमार को बुलाकर खूब डाँटा। राजकुमार ने यह बात अपने दोस्तों से बतायी।

"क्या करेंगे भाई! हमारे पिता भी हमें डाँट-डपट रहे हैं।" राजकुमार के दोस्तों ने कहा।

"मैं अब इस शहर में पल-भर भी नहीं रहूँगा। रोज़ मेरे पिता की गालियाँ सुनने से अच्छा यह है कि कहीं जाकर आज़ादी से जीवें।" राजकुमार ने कहा।

"तुम जाओगे तो हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे।" राजकुमार के दोस्तों ने कहा।

तीनों ने देश में भ्रमण करने का निश्चय किया।

"भ्रमण करने के लिए हमें धन की ज़रूरत है। वरना हमें बड़ी तक़लीफ़ होगी।" बनिये के लड़के ने कहा।

"रुपयों की थैलियाँ ढोकर नहीं ले जा सकते। हीरे-जवाहिरात ले जाना आसान है। मैं हम तीनों के लिए तीन हीरे ले आऊँगा। उनको बेचकर बहुत दिनों तक हम अपना खर्च चला सकते हैं।" राजकुमार ने समझाया।

राजकुमार तीन हीरे लेकर पूर्व निश्चित स्थान पर अपने दोस्तों से जा मिला। तीनों यात्रा के लिए रवाना हुए।

रवीन्द्रकुमार भुवाल्का

किसी न किसी उपाय से हड़पाने का उसने निश्चय किया। ज्यों ही वे तीनों आगे बढ़े, त्यों ही चोर दूसरे रास्ते से जल्दी जल्दी आगे बढ़ा और उनके सामने आकर बोला–"बाबू साहब! मैं बड़ा ग़रीब हूँ। आप लोग देखने में अमीर लगते हैं। मुझे भी आप के साथ चलने दीजिये। आपकी सेवा किया करूँगा। मुझे आपके खाते समय थोड़ा खाना खिलावे तो बस खुश रहूँगा।"

वे तीनों उम्र में छोटे हैं। रास्ता डरावना है। वह आदमी मज़बूत है। ऐसे आदमी का नौकर और रक्षक बनना अच्छा ही होगा। यह सोचकर उन युवकों ने अपने साथ चलने को कहा।

उस दिन शाम को वे लोग एक जंगली जाति की बस्ती के निकट पहुँचे। उनका रास्ता भीलों के सरदार की झोंपड़ी के आगे से होकर जाता था। उस झोंपड़ी के बाहर एक खंभे से बंधे पिंजड़े में एक राक्षसी तोता था।

तोते ने उस रास्ते जानेवाले चारों आदमियों को देख आवाज़ की। उसके चिल्लाने का मतलब था कि उन चारों लोगों के पास धन है! नहीं तो वह कभी न

चलते चलते वे लोग एक जंगल में जा पहुँचे।

"इस जंगल में चोर-डाकू होंगे। वे बड़ी आसानी से हमें लूट लेंगे। अब कौन-सा उपाय किया जायँ!" बनिये के लड़के ने कहा।

"हम में से हर एक; एक हीरा निगल जायेंगे। इस जंगल के पार करने पर हमें चोरों का बिलकुल डर न होगा।" पुरोहित के लड़के ने कहा।

तीनों ने तीन रत्न निगल डाले।

एक चोर ने पेड़ की आड़ में छिपे उनकी बातचीत सुनी। उनके हीरों को

चिल्लाता। इसलिए तोते की चिल्लाहट सुनते ही भील सरदार झोंपड़ी से बाहर आया और उस रास्ते जानेवाले उन चारों आदमियों को देख गरज उठा–"ठहर जाओ! तुम लोगों के पास जो कुछ धन है, वहाँ रखकर तब चलो। वरना जान से हाथ धो बैठोगे।"

युवकों के साथ चलनेवाले चोर ने कहा–"हमारे पास कुछ नहीं है। चाहे तो जाँच कर लो।"

भील सरदार ने तीनों युवकों की गहरी जाँच की। उसे मालूम हुआ कि युवकों के पास कुछ नहीं है। तोते की चिल्लाहट पर अचरज करते बोला–"अच्छा! तुम लोग जा सकते हो?"

उनके जाते ही तोता और भी जोर शोर से कर्कश स्वर में चिल्लाने लगा, मानो वह अपनी सारी संपत्ति खो बैठा हो। भील सरदार को यक़ीन हो गया कि उन युवकों के पास कहीं ज़रूर धन है। वे लोग जान बूझकर छिपाते हैं। यह सोचकर उसने अपने अनुचरों को आदेश दिया–"इन लोगों को एक झोंपड़ी में बन्दी बनाकर रख दो। मैं रात को लौटकर इनकी बात देख लूंगा।"

भीलों ने उन चारों आदमों को ले जाकर एक वृत्ताकार की झोंपड़ी में भेजकर दर्वाजा बंद किया। उस झोंपड़ी के एक ही दर्वाजा था।

दर्वाजे के बाहर भील लोग भाले लेकर, पहरा दे रहे थे।

आधी रात के समय भील सरदार लौटा। उसने झोंपड़ी का दर्वाजा खुलवा दिया और अपने क़ैदियों से कहा–"तुम लोगों ने धन छिपाया है, यह बात सच है। लेकिन वह तुम्हारे बदन पर नहीं है। कहाँ है, साफ़ साफ़ बतला दो, नहीं तो तुम्हारे पेट चीर डालूंगा।"

चोर ने सोचा। भील सरदार जो कहता है, वह ज़रूर करेगा। उसके पेट को छोड़ बाक़ी तीनों के पेटों में हीरे हैं। भील सरदार पहले उनमें से किसी एक का पेट चीर डालेगा। उन तीनों के पेटों में हीरे मिलने के बाद वह ज़रूर यह सोचेगा कि मेरे भी पेट में हीरा होगा। तब चारों के पेट चीर डालेगा और सब का मरना निश्चित है। ऐसा न होकर भील सरदार पहले उसी का पेट चीरकर देखे, तो उसमें कुछ न मिलेगा और इससे उन तीनों युवकों की जान बचाने की संभावना है। उसके पेट में कुछ न पाकर भील सरदार यह सोच सकता है कि उनके पेटों में भी कुछ न होगा।

इस तरह सोचकर चोर ने हिम्मत के साथ भील सरदार को ललकारते हुए कहा— "हम कहते हैं कि हमारे पास कुछ नहीं है। तुम यक़ीन नहीं करते हो तो हमारे पेट चीरकर देखना चाहो तो चीरकर देख लो।"

भील सरदार को गुस्सा आया। उसने कमर में से कटार निकालकर चोर के पेट को चीर डाला। चोर की जान चली गयी और वह नीचे गिर पड़ा। लेकिन उसके पेट में एक रत्ती के बराबर का सोना भी भील सरदार को न मिला।

अकारण ही एक आदमी की जान लेने पर भील सरदार पछताया। अपने को धोखा देनेवाले तोते को मन ही मन गालियाँ देते उन तीनों युवकों को छोड़ दिया।

इस अनुभव के बाद पर्यटन पर उनके मन में विरक्ति पैदा हुई। वे उसी रास्ते वापस लौटकर अपने शहर में पहुँचे और अपने अपने पिता की बातें सुनते मन लगाकर विद्या सीखी। इसके बाद वे तीनों युवक बड़े होने पर बुद्धिमान आदमी कहलाये।

# शिथिलालय

## [ ४ ]

[ शिथिलालय के अपने को पुजारी कहनेवाले विकृत आकारवाले की खोज में शिखिमुखी और बिक्रमकेसरी अलग-अलग रास्ते में गये। शिखिमुखी ने-जब अमराई में क़दम रखा तब उसके पैर में एक रस्सी कस गयी और उसने उसे पेड़ की डाल से लटका दिया। पुजारी को शिखिमुखी ने भाले से भोंकना चाहा। पुजारी के अनुचर चिल्लाते हुए शिखिमुखी को मारने भाले उठाकर टूट पड़े। इसके बाद—]

पुजारी के अनुचरों ने जब शिखिमुखी के ऊपर भाले उठाये तब उसने सोचा— अब मृत्यु निश्चित है। उसके मन में यह जोश उमड़ने लगा कि मरने के पहले कम से कम इन बदमाशों में एक को तो मारना ही होगा। तुरंत उसने 'जय शबर माता की' घोष करते अपने पैर में जो रस्सी बंधी थी उसे निशाना लगाकर भाला चलाया। उसकी चोट से रस्सी आधी कट गयी और बाक़ी उसके बोझ से फट से टूट गयी। शिखिमुखी ज़रा भी लापरवाह रहता तो धम्म से उसका सिर ज़मीन से टकरा जाता; लेकिन उसने बंदर की तरह एक झटके में पल्थी मार कर अपने को रोकने के लिए भाला ज़मीन में घुसेड़ दिया।

शिखिमुखी पर भालों का प्रयोग नहीं किया। इससे शिखिमुखी को बड़ा अच्छा मौक़ा मिला। उसने सारी ताक़त लगाकर एक के घुटने पर लात मारी और जब वह चीखते-चिल्लाते गिरने लगा, तब उसकी पीठ के नीचे से खिसक कर दुश्मनों की आँखों में धूल झोंककर भाग गया।

पुजारी के अनुचर उसकी इस होशियारी पर अचरज में आ गये। उनमें से एक ने शिखिमुखी की तारीफ़ करते हुए कहा—"यह जंगली पैंतरे बदलना बड़ा अच्छा जानता है। ऐसा आदमी हमारे दल में होता तो हमारे लिए सब बाएँ हाथ का खेल होगा।"

"यह आदमी नहीं, बंदर है। ज़मीन को छुए बिना पेड़ों की डालों पर उछलते, रेंगते विन्ध्याचल तक पहुँच जाएगा। देखते क्या हो? उस पर भाले चलाओ।" एक दूसरे अनुचर ने कहा।

इस तरह दो-तीन क्षण तक पुजारी के अनुचर चकित हो बकते रहे; लेकिन

पुजारी के अनुचर यह जानते थे कि शिखिमुखी भागने की कोशिश कर रहा है, फिर भी तलवारों का प्रयोग न कर सके। उनका डर था कि तलवार चलाने से उन्हीं के पैरों में लग जाएगी। शिखिमुखी ने दुश्मन को ही अपने कवच के रूप में इस्तेमाल किया; लेकिन वह थोड़ी दूर ही भाग गया था, इतने में पुजारी के अनुचर एक साथ ज़ोर से चिल्ला उठे।

"उसे मार दो, भागने न दो।" इस तरह चिल्लाते हुए उसका पीछा करते घेरने का प्रयत्न करने लगे।

उसी वक़्त दूर से एक सीठी की आवाज़ सुनाई दी। वह शिथिलालय के पुजारी के द्वारा अपने अनुचरों को दी जानेवाली सूचना है। उस चेतावनी को सुनते हुए अनुचरों में से एक ने कहा—"पुजारी साहब

बुलाते हैं, दौड़ो! शायद कोई जरूरी काम होगा।"

"इस भागनेवाले शबर की बात क्या होगी? इसको पुजारी साहब के पास पकड़कर न ले जाना है?" एक ने सवाल किया।

उस सवाल का जवाब एक अनुचर देने ही जा रहा था कि इतने में लाल कुत्ते के ज़ोर से भूंकने की आवाज सुनाई दी। उसके साथ ही शबरों की चिल्लाहटें भी! विक्रमकेसरी "शिखिमुखी! शिखिमुखी!" पुकारते उसी ओर दौड़ते आते हुए चोरों ने देखा।

पुजारी ने इस बार और ज़ोर से सीठी बजायी। वह खतरे की सूचना थी। उसके अनुचर किसी तरह की सूचना दिये बिना घायल चोरों को कंधों पर डालकर जंगल की ओर भागने लगे।

शिखिमुखी ने लाल कुत्ते को ज़ोर से पुकारा। उसकी पुकार सुनते ही कुत्ता उसके पास दौड़ते आ पहुँचा। उसके पीछे विक्रमकेसरी और चार-पांच शबर भी आ पहुँचे।

"मैं यह सोचकर डर गया कि तुम किसी खतरे में फँस गये हो।" विक्रमकेसरी ने शिखिमुखी से कहा।

"बहुत भयानक खतरे में ही फँस गया। क़िस्मत ने साथ दी, बच गया। वे दुष्ट इसी प्रान्त में छिपे रहकर मुझ पर टूटे पड़े और मुझे औंधे मुँह लटकाकर मार डालना चाहा। ये सब आराम से बताऊँगा। पहले हमें वह जगह ढूँढनी है जहाँ पुजारी के अनुचर छिपे रहते हैं। एक दो ही सही, उनका पीछा कर सकें तो सूरज के निकलते ही उस सारे दल का जंगली जानवरों की तरह शिकार खेल सकते हैं।" शिखिमुखी ने कहा।

"जंगल में वे कहाँ छिपे हैं, इसका पता लगाने के लिए हम दोनों पर्याप्त हैं।

लाल कुत्ता उनकी गंध लेकर हमें रास्ता दिखायेगा। सुबह के होते ही बस्ती के लोग हमारी मदद करने आयेंगे।" यह कहते विक्रमकेसरी ने शबरों की ओर घूमा और उनसे कहा—"अब तुम लोग जाओ! यह देखो, पुजारी के अनुचर फिर बस्ती में आग न लगा दें। हम दोनों में कोई एक उन दुष्टों के जंगल का पता लगाकर समाचार लायेंगे।"

शबर चले गये। शिखिमुखी और विक्रमकेसरी जंगल की तरफ़ रवाना हुए। आगे-आगे लाल कुत्ता ज़मीन की गंध लेते चलने लगा। शिखिमुखी को विश्वास हो गया कि चोरों के जानेवाले रास्ते का पता कुत्ते ने लगाया है। धीरे धीरे लाल कुत्ता उन्हें जंगल के एक पहाड़ के पास ले गया, वहाँ एक विशाल वृक्ष के नीचे खड़े होकर, थोड़ी देर तक ज़मीन सूँघता रहा, फिर पेड़ की चारों तरफ़ चक्कर काटकर, सर उठा, ऊपर देखने लगा।

विक्रमकेसरी को कुत्ते का यह व्यवहार विचित्र-सा लगा। वह कुछ बोलने ही जा रहा था कि शिखिमुखी ने उसको रोककर, सर उठाकर पेड़ की डालों में ध्यान से देखा। डालों की झुरमुट में उसे एक मनुष्य का रूप दीख पड़ा। खूब जाँच करके देखने से शिखिमुखी को मालूम हुआ कि वह पुजारी का अनुचर है। वह पेड़ की डाल को अपने दोनों हाथों से बाँधकर चित लेटे बेखबर सो रहा है। उसके म्यान से एक तलवार नीचे की ओर लटक रही थी।

शिखिमुखी उसे विक्रमकेसरी को दिखाते हुए धीरे बोला—"विक्रम! वह शिथिलालय के पुजारी का पहरेदार होगा। पुजारी ने उसे यह आदेश दिया होगा कि पेड़ पर छिपे रहकर इस ओर आनेवाले लोगों पर निगरानी रखे और इसकी खबर उसे

पहुँचा दे। लेकिन यह बदमाश रात-भर जंगल में घूम-घाम कर सूर्योदय के समय मज़े से सो रहा है।"

"इसे जान से पकड़कर हमें रहस्य का पता लगाना है।" विक्रमकेसरी ने कहा।

"जान से पकड़ना ही नहीं। इस बात का भी हमें ख्याल रखना है कि नींद से जागते ही वह चिल्ला न उठे, वह चिल्लायेगा तो पुजारी को मालूम हो जायेगा कि हम इस प्रदेश में आ गये हैं। देखो, सूर्योदय हो रहा है। तुम पेड़ के नीचे ही रहो। मैं चुपचाप पेड़ पर चढ़कर उसे नीचे खींच लाऊँगा।" यह कहकर शिखिमुखी ने पास के पेड़ों पर फैली कुछ जंगली लताओं को तोड़ डाला और उससे एक रास्ता बनाकर धीरे से पेड़ पर रेंगता गया। पुजारी के अनुचर का गला एक हाथ से दबाते, दूसरे हाथ से एक भाला उसकी आँखों के सामने हिलाने लगा।

पुजारी के अनुचर ने चौंककर आँखें खोलीं। सामने सूरज की किरणों में चमचमाते चमकनेवाला भाला दिखाई दिया। वह डर के मारे काँपते चिल्लाने को हुआ कि शिखिमुखी ने गला दबाते कहा—"चिल्लाओगे तो तुम्हारी छाती में भाला भोंक दूंगा। कुछ दिन जीना चाहते हो तो चुपचाप मेरे साथ पेड़ से उतर आओ।" यह कहते शिखिमुखी ने उसके म्यान से तलवार निकाली। शिखिमुखी के पेड़ से उतरने के बाद पुजारी का अनुचर भी काँपते उसके पीछे पेड़ से उतर आया।

शिखिमुखी ने पुजारी के अनुचर को पेड़ के तने से सटकर बैठने का आदेश दिया—"तुम उस पुजारी के सेवक हो न? सच न कहोगे तो तुम्हें लाल कुत्ते का आहार बना दूंगा। इसलिए सच बतला दो कि वह इन पहाड़ों में किस गुफा में रहता है?"

भड़काओ, शिखिमुखी!" विक्रमकेसरी ने कहा।

शिखिमुखी के 'ऊँ' करते ही लाल कुत्ता पुजारी के अनुचर पर झपट पड़ा और उसका गला पकड़ते हुए रुका और सर घुमाकर मालिक की ओर देखा। "आहा! यह कुत्ता नहीं, संकेत जाननेवाला मनुष्य है।" विक्रमकेसरी ने कहा।

पुजारी का अनुचर जान के डर से चिल्लाने जा रहा था कि शिखिमुखी ने उस पर भाले का निशाना करके कहा– 'चिल्लाओ मत! अब भी सही, सच बोलो! लाल कुत्ता तुम्हारी कुछ भी हानि न करेगा।"

"मैंने सच बताया। मेरी रक्षा करो।" यह कहते पुजारी का अनुचर रोनी सूरत बनाने लगा।

चोर की आँखों में आँसू देख विक्रमकेसरी को उस पर रहम आ गयी। वह शिखिमुखी का कंधा पकड़कर बोला–" शिखी, बेचारे को मार न डालो। सच बोलता है। मालूम होता है न? हम उस अंधेरी गुफा में जाकर देख लेंगे, पुजारी अव्वल दर्जे का बदमाश है। वह अपनी सेवा करनेवाले नौकरों से भी दिल खोलकर शायद ही

पुजारी का अनुचर जान के डर से काँपते हुए बोला–" मुझे मार न डालियेगा। सच कहे देता हूँ। पुजारी साहब इसी पहाड़ी जगह में रोज़ एक गुफा को बदलते रहते हैं। कल शाम को वे भूत की तरह दीखनेवाली उस चट्टान के पीछे की अंधेरी गुफा है न, उसमें छिपे थे। मैं ने अपनी आँखों से देखा। मैं यह नहीं जानता कि अब वे वहाँ पर हैं कि नहीं।"

"तुम सच बताते हो?" शिखिमुखी ने गरजकर पूछा।

"पुजारी बड़ा झूठाखोर है। उसका अनुचर भिन्न क्यों होगा? लाल कुत्ते को

CHITRA

बोलता हो। बेचारा यह भी असली बात न जानता हो।"

शिखिमुखी ने लाल कुत्ते को अपने पास बुलाया और चोर से बोला—"अरे, तुमको थोड़ी देर के लिए हाथ-पैर बाँधकर, मुँह में कपड़े ठूँस इन झाड़ियों में छिपाकर हमें जाना होगा। तुम्हारे मालिक को देख लौटते समय तुम्हारे बंधन खोल दूँगा।" यह कहते उसके हाथ-पैर बाँध दिया। मुँह पर जंगली लताओं से बुना एक जाल बाँधा। गठरी की तरह उसे उठा ले जाकर घनी झाड़ियों में फेंक दिया।

इसके बाद शिखिमुखी, विक्रमकेसरी और लाल कुत्ता चोर के बताये पहाड़ी प्रदेश की तरफ़ रवाना हुए। उन्हें उस प्रदेश में मनुष्यों के पैरों के चिह्न दिखाई दिये। उन्हें देखते वे ज्यों ही थोड़ी दूर और आगे बढ़े, त्यों ही चार-पाँच आदमी के एक साथ चलने लायक़ एक पहाड़ी रास्ते पर, ऊँचाई पर एक काट की मूर्ति दिखाई दी। उसके हाथों में ख़ून से भीगा एक त्रिशूल था।

विक्रमकेसरी उस भयंकर मूर्ति को देख अचरज में आया और आगे बढ़ने लगा। इतने में शिखिमुखी ने उसका कंधा पकड़कर पीछे की ओर खींचा और पूछा—"विक्रम, ठहरो, हमें उस रास्ते से जाना है तो उस काट की मूर्ति के पैरों के नीचे से जाना होगा। उसके हाथ में ख़ून टपकानेवाले त्रिशूल को देखा?"

वे दोनों बात कर ही रहे थे कि लाल कुत्ता काट की मूर्ति के निकट जाकर उसके पैरों के नीचे आगे बढ़ने लगा। इतने में काट की मूर्ति तेज गति से हिलने व काँपने लगी। उसके हाथ का त्रिशूल बिजली की तरह ज़मीन की ओर 'झुम' करते धँसने लगा! (अभी है)
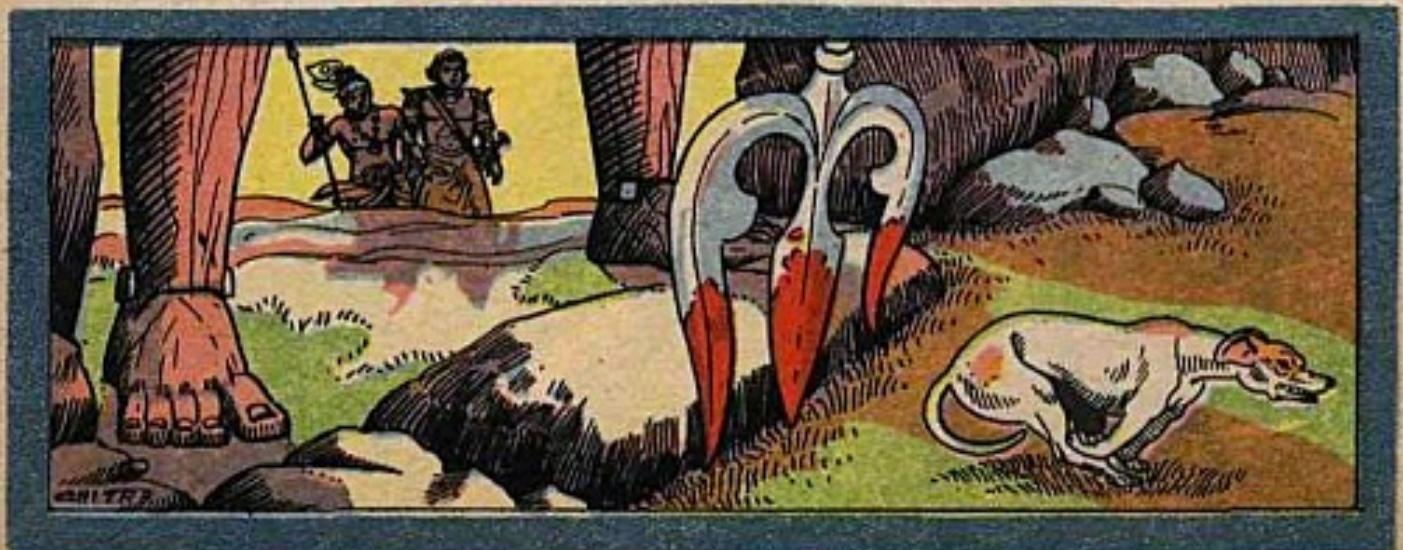
# सच्चा शिष्य

हठी विक्रमादित्य पेड़ के पास लौट गया, पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल, हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन्, तुमको देखने पर मुझे प्राचीन काल के अयोध्यां के शासक महाराजा धर्मपाल का स्मरण आता है। उन्होंने भी अपने राज्य-भार को त्याग कर कष्टों को मोल लिया था। श्रम को भूल जाने के लिए तुमको मैं धर्मपाल की कहानी सुनाता हूँ! सुनो–"

बेताल यों कहने लगा–

अयोध्या के शासक महाराजा धर्मपाल तत्वचिंतन में ज्यादा अभिरुचि रखते थे। एक तरफ़ राज्य-शासन का काम देखते वे कई वेदांत और दर्शन संबन्धी ग्रन्थ पढ़ा करते थे। अनेक तत्ववेत्ताओं से चर्चाएँ करते थे। बहुत पढ़ने और चर्चाएँ करने

## वेताल कथाएँ

के बाद भी उनको ऐसा मालूम पड़ता था कि उन्हें जानने और समझने की बातें तो बहुत हैं। उन्होंने निश्चय किया कि कोई अच्छे गुरु नहीं मिलते हैं, इसलिए यह अतृप्ति उन्हें सता रही है।

इस निश्चय पर पहुँचने के बाद धर्मपाल ने अपने राज्य भर में यह ढिंढोरा पिटवा दिया–"अच्छा गुरु क्या नहीं है?" इस ढिंढोरे का क्या अर्थ था, किसी की समझ में नहीं आया। लेकिन नगर के बाहर एक झोंपड़ी में रहनेवाले एक हरिजन ने ढिंढोरा पीटनेवाले को अपने पास बुलाया और यह जानकर कि राजा ने उसे ढिंढोरा पीटने का आदेश दिया है, उसने उससे कहा–"तुम ढिंढोरा ऐसा न पीटो! यह बता दो–'सच्चा शिष्य कोई नहीं है।' यह ढिंढोरा राजा के भवन तक पीटते जाओ।"

ढिंढोरा पीटनेवाला शाम के समय यह कहते राज-महल से बढ़ा जा रहा था–"सच्चा शिष्य नहीं है।" राजा ने उसको बुलाकर पूछा–"तुम से किसने कहा कि ढिंढोरा इस तरह पीटो!"

"महराज! मैंने आपके कहे अनुसार ढिंढोरा पीटते हमारे नगर की दक्षिणी दिशा में स्थित हरिजन बस्ती की ओर गया। वहाँ पर झोंपड़ी में से एक आदमी बाहर आया। मुझ से यह जानकर कि ढिंढोरा पीटने का आदेश आपने दिया है, उसने इस तरह ढिंढोरा पीटने को कहा।"

राजा ने उस हरिजन की झोंपड़ी के सभी चिन्हों का पता लगाया और रात के समय अपना वेष बदलकर उस हरिजन को ढूँढ़ते नगर की दक्षिणी दिशा में हरिजन बस्ती की ओर गये और झोंपड़ी के दरवाजे को खटखटाया। भीतर से हरिजन ने राजा से पूछा–"कौन है?"

"मैं महराज धर्मपाल हूँ। आप ही ने यह ढिंढ़ोरा पीटने के लिए कहा

था कि सच्चा शिष्य नहीं है।" राजा ने पूछा।

"जी हाँ, मैंने ही कहा था।" हरिजन ने जवाब दिया।

राजा ने हरिजन के चरणों में प्रणाम करके पूछा–"महात्मा! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ। आप मुझे ज्ञानोपदेश दीजिये।"

"इस वक़्त नहीं, कल सुबह आओ।" यह कहकर हरिजन अपनी झोंपड़ी के भीतर चला गया।

राजा ने समझा कि रात के समय वेष बदलकर गुप्त रूप में शिष्य बनना उनको पसंद नहीं है, इसीलिए राजा घर चले गये, दूसरे दिन सबेरे उठकर स्नान आदि करके फिर हरिजन की झोंपड़ी के पास पहुँचे और पुकारा–"महात्मा!"

हरिजन झोंपड़ी में से बाहर आया और पूछा–"आ गये, महाराज! राज्य क्या किया?"

"कुछ नहीं किया। राज्य तो मेरे अधीन में ही है।" राजा ने कहा। हरिजन कुछ बोले बिना झोंपड़ी के भीतर चला गया।

राजा फिर अपने महल में गये और अपने मन्त्रियों को बुलाकर कहा–"आज से मैं राजा नहीं हूँ। अपनी इच्छा के अनुसार किसी को राजा बनाकर राज्याभिषेक कराइये।" यह कहकर राजा फिर हरिजन के पास गये और बोले–"महात्मा! मैं राज-त्याग करके आया हूँ। अब मैं राजा नहीं हूँ, साधारण आदमी हूँ।"

हरिजन के चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई दी।

"धर्मपाल! इस वक़्त से तुम मेरे शिष्य हो! मैं तुम्हारा गुरु हूँ। मेरे आदेश का पालन करना ही तुम्हारा काम है।" इसके बाद हरिजन उसको साथ लेकर रवाना हुआ।

उस दिन से धर्मपाल वेश्या के घर के बाहर चबूतरे पर बैठा करता था, मालकिन जो भी काम बता देती, 'गुरु का आदेश' मानकर कर देता था।

समय पर जो भी मिलता, खाकर, वर्षा, गरमी और जाड़े के मौसम में भी वह उसी चबूतरे पर पड़ा रहता। अपने नौकर के आज्ञा पालन पर वेश्या भी खुश हुई। वह और उसकी पुत्री भी धर्मपाल के प्रति बड़ी सहानुभूति रखती थीं। धर्मपाल कभी वेश्या या उसकी बेटी के बारे में विचार न करके अपने गुरु के उद्देश्य को जानने की कोशिश करता था। लेकिन सोचकर भी वह समझ नहीं पाता था।

कुछ दिन के बाद वे एक दूसरे राज्य में पहुँचे। हरिजन ने राज-पथ पर एक जगह खड़े हो लोगों को इकट्ठा किया और धर्मपाल को दस सोने के सिक्कों में गुलाम के रूप में बेचना चाहा। एक वेश्या ने धर्मपाल को खरीदना चाहा।

हरिजन ने अपनी शर्त बता दी–"देखो, माई! जब मेरी इच्छा होगी, तब मैं तुमको दस सिक्के देकर इस आदमी को ले जाऊँगा। इस शर्त पर तुम सहमत हो तो मुझ से इस आदमी को खरीद सकती हो।"

वह औरत इस शर्त से सहमत हो गयी, धर्मपाल को साथ लेकर अपने घर लौटी।

दिन बीतते गये। एक दिन जोर से पानी बरस रहा था। अभी अंधेरा था। उसी वक्त जागकर मुँह धोकर धर्मपाल ने कुल्ला किया और थूक दिया। पानी वेश्या पर जा गिरा। उस अंधेरे में वेश्या का चबूतरे के पास आना धर्ममाल ने देखा न था।

वह जल्दी-जल्दी घर के भीतर पहुँची। सोनेवाली अपनी बेटी को जगाकर शिकायत की–"हमने नौकर को आज तक नहीं पहचाना। खूब खा-पीकर उसे चर्बी चढ़ गयी है। उसने मुझपर थूक दिया है।"

उसकी लड़की ने नींद की खुमारी में धीरे से आँखें खोलकर देखा और कहा– "माँ! यह क्या? तुम कैसे बदल गयी हो?" उसकी आँखें विस्फारित हो गयीं और नींद की खुमारी जाती रही।

वेश्या ने आइने में अपने चेहरे को देखा और वह चकित हो गयी! वह पहले से सुन्दर और युवती बन गयी थी!

माँ-बेटी ने आपस में बात करके यह निश्चय किया कि जूठे पानी के लगने से ही वेश्या में यह परिवर्तन हो गया है। वह ज़रूर कोई सिद्ध पुरुष होगा। बेटी ने अपनी इच्छा प्रकट की कि वह धर्मपाल के साथ शादी करना चाहती है। माँ को भी यह बात पसंद आयी।

सवेरा हो गया। पानी बरसना भी थम गया।

वेश्या बाहर आयी और धर्मपाल से बोली–"भीतर आइये। तैल स्नान कीजिये!"

"गुरु का आदेश!" कहते धर्मपाल भीतर जा पहुँचा। तैल स्नान किया। नये कपड़े पहने, मिष्टान्न भोजन किया।

उसी रात को शादी का इंतज़ाम हो गया। अपनी मालिकिन जो भी आदेश
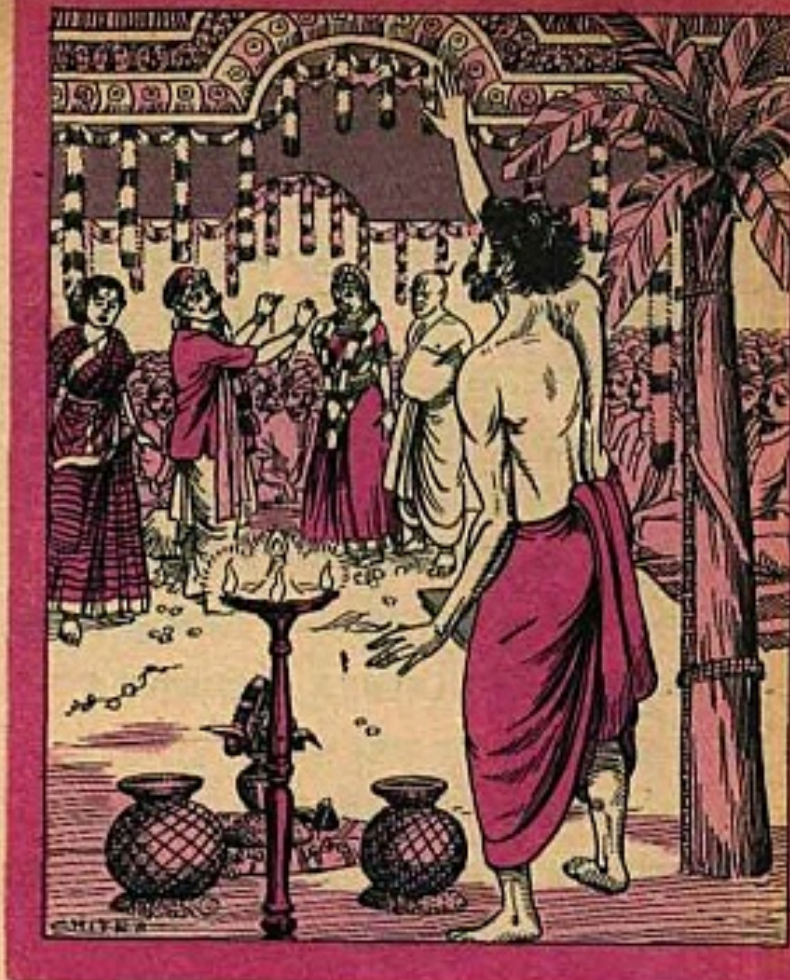
देती, उसे 'गुरु की आज्ञा' मानकर धर्मपाल कर देता था।

पुरोहित के कहने पर वेश्या ने धर्मपाल को आदेश दिया कि वह उसकी बेटी के गले में मंगल-सूत्र बाँधे, 'गुरु की आज्ञा' कहते धर्मपाल उस युवती के गले में मंगल-सूत्र बाँधने ही जा रहा था कि गुरुजी आ पहुँचे और बोले–"ठहर जाओ!"

"लो, ये तुम्हारे दस सोने के सिक्के हैं। मेरे शिष्य को मुझे सौंप दो।" यह कहते गुरु ने वेश्या के हाथ में दस सिक्के धर दिये।
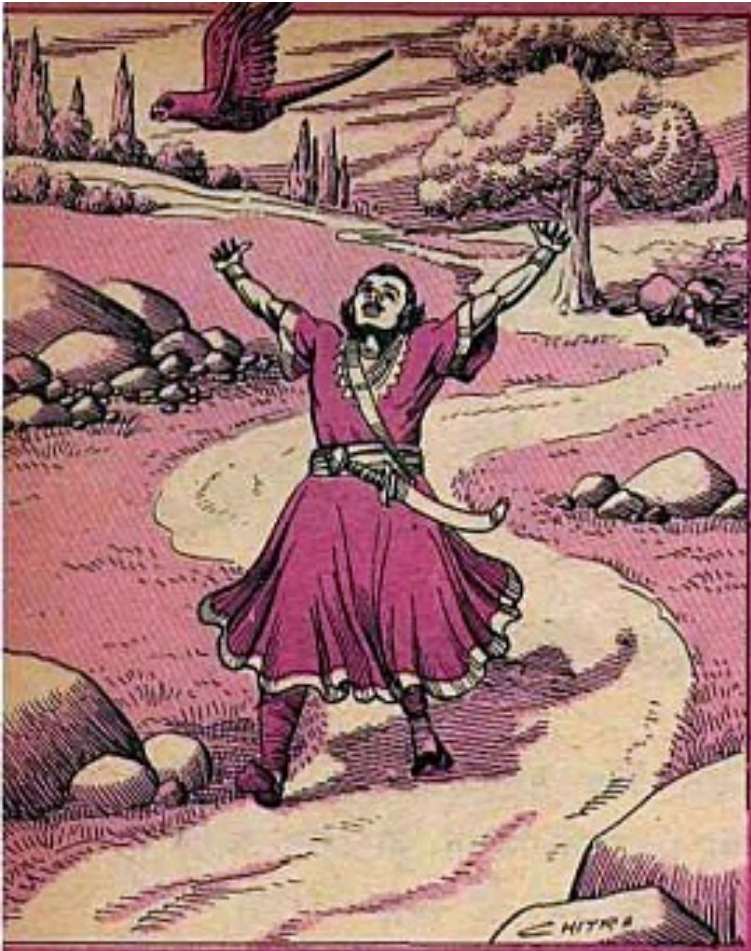
सका। इसलिए उसने योगी के घर के दर्वाजे में एक छेद बनाया और उसमें से देखते हुए वह सारी विद्या सीख ली जिसे योगी ने विजय को सिखायी।

वह परकाया-प्रवेश विद्या थी। एक महीने के पूरा होते होते विजय के साथ गुणनिधि ने भी वह विद्या सीखी।

योगी के वहाँ से चले जाने के बाद विजय और गुणनिधि एक दिन सैर करने जंगल की ओर गये।

"दोस्त! योगी ने तुमको कैसी विद्या सिखायी?" रास्ते में गुणनिधि ने विजय से पूछा, मानो वह बिल्कुल वह बात जानता न हो।

"योगी के पास मैंने 'परकाया-विद्या' सीख ली थी।" विजय ने जवाब दिया।

"ऐसी बात है! वह विचित्र विद्या मुझे भी दिखा दो।" गुणनिधि ने पूछा।

थोड़ी दूर जाने के बाद जंगल में एक पेड़ के नीचे उन्हें एक मरे हुए तोते का शरीर दिखाई दिया। गुणनिधि ने उसे विजय को दिखाते हुए पूछा—"क्या तुम उसके शरीर में प्रवेश कर उड़ सकते हो? यह कल्पना करने में भी असंभव लगता है।"

"तब तो अपनी आँखों से देखो!" यह कहते विजय ने पेड़ से सटकर बैठे अपने शरीर को छोड़ा और तोते के शरीर में प्रवेश कर उड़ने लगा। विजय ठीक से देख भी न पाया था कि गुणनिधि ने अपना शरीर छोड़कर विजय के शरीर में प्रवेश किया और तलवार से अपने शरीर के दो टुकड़े कर दिये। उसके बाद वह घर की ओर चला। उसने सोचा कि अब उसे राज्य और जया भी प्राप्त होगी।

तोते के शरीर में स्थित विजय को जब गुणनिधि की दुष्टता मालूम हुई तब तेजी से उड़कर अंत:पुर पहुँचा, सारी कहानी अपनी पत्नी को सुनायी और कहा—"मेरे शरीर में स्थित गुणनिधि को दूर रखने का कोई

उपाय करो। फिलहाल मुझे कहीं छिपा रखो।"

जया ने तोते को गुप्त रूप से छिपा दिया।

थोड़ी देर बाद गुणनिधि लौट आया। उसे देख सब ने विजय ही समझा। उसने अपने पिता मंत्री से मिलकर सारी कहानी सुनायी और कहा–"मेरा शरीर जंगल में अमुक जगह पर है। उसे मंगाकर दहन करा दो। इसके बाद हम तुम मिलकर मज़े से राज्य चला सकते हैं।"

मंत्री दुष्ट स्वभाव का न था। लेकिन अब वह कुछ नहीं कर सकता था, इसलिए मौन ही रह गया।

गुणनिधि को अंत:पुर में प्रवेश करना संभव न हो सका। वह भीतर जा रहा था कि इतने में दासियों ने आकर उसे रोका और कहा–"युवराज्ञी ने आज सुबह कोई व्रत शुरू किया है, इसलिए वे किसी से बोलती नहीं। व्रत के समाप्त होने तक आपको अंत:पुर में प्रवेश करने से रोकने की आज्ञा दी है।"

पहले गुणनिधि यह सोचकर डर गया कि कहीं सचाई प्रकट हो गयी हो। लेकिन यह सोचकर अपने आपको ढ़ाढ़स बंधाया कि प्रकट होने की संभावना नहीं है। भविष्य को खतरे से खाली बनाने के विचार से उसने सब फालतू तोतों को मँगाया, खरीदा और उन सब को गला घोंटकर मार डाला।

यह समाचार सुनते ही जया को तोते की बात पर और यक़ीन हुआ। उसने अपने पति को बचाने के सारे प्रबंध करके, युवराज के शरीर में स्थित गुणनिधि को खबर भेजी। वह बड़ी खुशी से जया को देखने अंत:पुर में आया।

जया ने बड़े ही प्यार से उसकी ओर देख मंदहास किया और कहा–"आज से

धर्मपाल विवाह की वेदी से उठकर आया और गुरु के चरणों में साष्टांग दण्डवत किया। थोड़ी दूर तक दोनों साथ साथ चले। हरिजन ने धर्मपाल को श्रद्धा के साथ प्रणाम करते हुए कहा—"महात्मन्! सोचा था कि मेरे योग्य शिष्य नहीं है। अब साबित हुआ कि योग्य शिष्य है। अब तुम्हारा रास्ता अलग है, मेरा अलग है।" यह कहकर वह चला गया।

धर्मपाल सीधे जंगल में चला गया। कंद-मूल और फल खाते, तपस्या करके अपने जन्म को सार्थक बनाया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा— "राजन्, मेरा एक संदेह है। हरिजन ने धर्मपाल को इतनी यातनाएँ दीं, लेकिन किसी प्रकार का उपदेश अपने शिष्य को दिये बिना क्यों चला गया? इस सवाल का जवाब जानकर भी न दोगे तो तुम्हारा सर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमादित्य ने कहा—"धर्मपाल के विषय में उसे नये रूप से उपदेश पाने को कुछ नहीं रहा। वह बहुत समय से ही तत्व संबन्धी ग्रन्थ पढ़ा करता था। कई लोगों से इस संबन्ध में चर्चाएँ भी की थीं। उनको अमल करने का मौक़ा नहीं मिला था। यही उसके असंतोष का कारण था। हरिजन ने गुरु बनने के पहले ही धर्मपाल के मन में जो राजसी वृत्ति और अभिमान था, उनको दूर किया। इसके बाद धर्मपाल ने गुलाम जीवन बिताना भी सीख लिया। इसलिए उसे उपदेश देने के लिए कुछ नहीं रह गया था। धर्मपाल ने इसीलिए उपदेश देने की प्रार्थना अपने गुरु से नहीं की और चुपचाप जंगल में चला गया।"

इस प्रकार राजा के मौन-भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो गया और फिर पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

उपाय करो। फिलहाल मुझे कहीं छिपा रखो।"

जया ने तोते को गुप्त रूप से छिपा दिया।

थोड़ी देर बाद गुणनिधि लौट आया। उसे देख सब ने विजय ही समझा। उसने अपने पिता मंत्री से मिलकर सारी कहानी सुनायी और कहा–"मेरा शरीर जंगल में अमुक जगह पर है। उसे मंगाकर दहन करा दो। इसके बाद हम तुम मिलकर मजे से राज्य चला सकते हैं।"

मंत्री दुष्ट स्वभाव का न था। लेकिन अब वह कुछ नहीं कर सकता था, इसलिए मौन ही रह गया।

गुणनिधि को अंत:पुर में प्रवेश करना संभव न हो सका। वह भीतर जा रहा था कि इतने में दासियों ने आकर उसे रोका और कहा–"युवराज्ञी ने आज सुबह कोई व्रत शुरू किया है, इसलिए वे किसी से बोलती नहीं। व्रत के समाप्त होने तक आपको अंत:पुर में प्रवेश करने से रोकने की आज्ञा दी है।"

पहले गुणनिधि यह सोचकर डर गया कि कहीं सचाई प्रकट हो गयी हो। लेकिन यह सोचकर अपने आपको ढ़ाढ़स बंधाया कि प्रकट होने की संभावना नहीं है। भविष्य को खतरे से खाली बनाने के विचार से उसने सब फालतू तोतों को मँगाया, खरीदा और उन सब को गला घोंटकर मार डाला।

यह समाचार सुनते ही जया को तोते की बात पर और यक़ीन हुआ। उसने अपने पति को बचाने के सारे प्रबंध करके, युवराज के शरीर में स्थित गुणनिधि को खबर भेजी। वह बड़ी खुशी से जया को देखने अंत:पुर में आया।

जया ने बड़े ही प्यार से उसकी ओर देख मंदहास किया और कहा–"आज से

मेरा व्रत समाप्त होता है। ब्राह्मणों के भोज का प्रबंध कराइये। ढिंढोरा पिटवा कर सब ब्राह्मणों को भोज में बुला भेजिये।"

"वह कौन बड़ी बात है?" यह कहकर गुणनिधि ने एक हज़ार ब्राह्मणों के लिए भोज का इंतज़ाम किया।

ब्राह्मण जब दो पंक्तियों में बैठकर भोजन कर रहे थे तब एक मरा कौआ उन पंक्तियों के बीच आ गिरा। यह काम जया की दासियों ने ही किया था।

ब्राह्मण सब पत्तलों को छोड़ उठ ही रहे थे कि जया ने उन्हें उठने से रोका और समझाया कि पल-भर में उड़ जाएगा। इसके बाद अपने पास ही खड़े गुणनिधि से गुप्त रूप से कहा–"आप परकाया-प्रवेश-विद्या जानते हैं न? उस कौए में प्रवेश करके उसके शरीर को कहीं फेंक आइये।"

गुणनिधि ने अपने शरीर को एक कमरे के अन्दर छोड़ दिया और कौए में प्रवेश कर उड़ते दूर चला गया। ब्राह्मणों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ फिर भोजन किया!

इस बीच में तोते के शरीर में रहनेवाला विजय अपने शरीर में प्रवेश कर जया के पास आया और बोला–"अब तो पिण्ड छूट गया है।"

ब्राह्मणों के भोजन के बाद गुणनिधि कौए के शरीर में जया के पास आया। उसे निकट बुलाकर जया ने पकड़ लिया और उस पिंजड़े में रखा, जिस में पहले गुप्त रूप से तोते को रखा था। फिर उस पिंजड़े को छत से लटका दिया। गुणनिधि ने समझ लिया कि विजय अपने शरीर में फिर प्रवेश कर चुका है और उसे अपनी करनी का फल मिला है।

लेकिन कोई यह न समझ सका कि जया कौए को पिंजड़े में रखकर क्यों पालती है!

# अक्लमन्दी बात

चित्रपुरि राज्य का राजा चतुरवर्मा अपने नाम के अनुरूप चतुर और होशियार था। वह बड़ी समर्थता से शासन करता था और देखता था कि प्रजा को किसी प्रकार के कष्ट और अन्याय न हो। प्रजा के कष्टों को जानने के लिए जब तब वेश बदल कर वह राज्य में घूमा करता था।

एक बार राजा बीमार हो गया। कई दिनों तक राज्य में घूम न सका। इसलिए अपने मंत्री और सेनापति को बुला कर कहा—"तुम लोग वेश बदल कर जाओ और हमारे राज्य में' कहाँ-कहाँ क्या होता है, पता लगाओ।"

राजा के कहे मुताबिक़ वे दोनों रवाना हुए और घूमते-घामते बड़ी रात गये सिंगवरम नामक गाँव पहुँचे। बड़ी दूर तक सफ़र करने से थक गये थे, इसलिए गाँव के बाहर बहनेवाले झरने में प्यास बुझाकर, अपने घोड़ों को भी पानी पिलाया, उनको पेड़ों से बान्ध दिया। इसके बाद पैदल गाँव में पहुँचे।

गाँव की गली निर्जन थी। लेकिन एक घर के आगे चबूतरे पर दो बच्चे बैठे ऐसे लगते थे, मानों किसी का इंतजार करते हो। जब सारा गाँव गहरी नींद सो रहा था तब ये बच्चे न केवल जागते थे, बल्कि किसी का इंतज़ार करते थे, यह बात गुप्त वेशों में रहनेवाले मंत्री और सेनापति को अचरज की लगी। मंत्री ने उनके निकट रुककर पूछा—"इस रात के वक़्त यहाँ बैठे तुम लोग क्या करते हो?"

"सूरज का इंतज़ार करते हैं।" बच्चों में से बड़े ने कहा।

यह जवाब मंत्री को कुछ बेढंगा-सा लगा।

"घर में कोई बड़े नहीं हैं?" सेनापति ने बच्चों से पूछा।

धर्मेंद्र गुप्त

"जलनेवाली लकड़ी में जहर डालकर काल के साथ लड़ने गया है, सूरज।" दूसरे बच्चे ने कहा।

यह जवाब और भी बेढंगा था। मंत्री और सेनापति उन बच्चों से कुछ पूछे बग़ैर आगे बढ़े।

घर लौटने पर राजा के दर्शन करके उन लोगों ने जो कुछ भ्रमण में देखा, बताया और साथ ही सिंगवरम के बच्चों की बातें भी सुनायीं।

राजा ने उनकी बातों को सुन मुस्कराते हुए पूछा—"कल उन बच्चों के बाप को दरबार में बुला भेजिये।"

दूसरे दिन राजा जब दरबार में थे, तब उन बच्चों का बाप आकर हाथ जोड़कर राजा के सामने खड़ा हो गया।

"तुम्हारा नाम सूरज भान है न?" राजा ने पूछा।

"जी हाँ, सरकार।" बच्चों का बाप बोला।

राजा ने फिर पूछा—"मैंने सुना है, तुम विष वैद्य में प्रवीण हो। ठीक है न?"

"आपकी मेहर्बानी से।" सूरजभान ने कहा।

राजा ने फिर पूछा—"मुझे दो कम्बख़्तों से पाला पड़ा है। बहुत परेशान हूँ, क्या रास्ता दिखाओगे?"

"कौन हैं, वे ?" सूरजभान ने पूछा।

"एक ने काया के सर्प को तोड़ दिया। इसलिए चलने-फिरनेवाले जूते घिसते नहीं।" राजा न कहा।

"दूसरे ने क्या किया ?" सूरजभान नें पूछा।

"खज़ाना के दर्वाज़े की छड़ी तोड़ दी। रास्ता खराब हो गया।" राजा ने कहा।

"ज्योतिषी क्या करते हैं?" सूरज ने फिर पूछा।

"आकाश की ओर ताक रहे हैं। तुम्हें इस अभागे को रास्ता दिखाना होगा। अच्छा फल मिलेगा।" राजा ने कहा।

"जो आज्ञा।" यह कहकर सूरजभान ने राजा के गाल पर ज़ोर से दो चपत लगायी, राजा को सिंहासन से नीचे खींच कर औंधे गिराया और उसकी पीठ पर अपने घुटनों से चार धक्के दिये!

दरबार में हाहाकार मच गया। राज भटों ने जल्दी दौड़ कर सूरजभान की भुजाओं को खींच कर बांध दिया।

राजा हँसते हुए उठ खड़ा हुआ और फिर सिंहासन पर बैठकर बोला-"आप लोग घबराइये नहीं! कई दिनों से मेरी रीढ़ के सर्प में पीड़ा है और चलने नहीं देती। मेरे दांत सड़ गये थे, जिससे भोजन भी नहीं कर पाता था। दरबारी वैद्य चिकित्सा नहीं कर सके। मुझे मालूम हुआ कि सूरजभान बड़ा वैद्य है। इलाज करने उसे बुला भेजा। उसने आप लोगों के सामने ही मेरी दोनों बीमारियों का इलाज किया।" दरबारियों को इस प्रकार राजा ने समझाया।

इसके बाद राजा ने सूरजभान का बड़ा सम्मान किया और घर भिजवा दिया। तब सब लोगों को असली बात मालूम हुई।

# हिन्दू रिवाज़

एक नवाब ने एक हिन्दू राजा को लड़ाई में हराकर उसका राज्य अपने अधिकार में लिया। राज्य के सभी लोग हिन्दू ही थे। इसलिए उनके रिवाज़ों का पालन करते, उनकी संस्कृति की रक्षा करने का इंतज़ाम किया। नवाब ने सोचा कि इस तरह करने से लोग शांति से रहेंगे और विद्रोह नहीं करेंगे। हिन्दू राजा के दरबारी कवियों और पुरोहितों को भी अपने दरबार में रख लिया। नवाब हिन्दुओं के रिवाज़ों की जानकारी रखता था। पंडितों से संस्कृत के काव्य पढ़वा कर उसका अर्थ सुन लेता था। कभी कभी पुराण भी सुनता था।

नवाब का अंगरक्षक कासिम खाँ ने भी दो-चार संस्कृत के शब्द सीख लिये। लेकिन नवाब का हिन्दुओं के रिवाज़ों को अमल करना उसे पसंद न था। नवाब के हुक्के में हमेशा आग देने का काम उसीका था। उसके मन में एक विचार आया कि यह काम किसी न किसी तरह पुरोहित के सर मढ़ देना है।

कासिम खाँ ने एक दिन नवाब से कहा–"हुजूर! हिन्दुओं के रिवाज़ के मुताबिक़ हुक्के में आग देने का काम दरबारी पुरोहित का है।"

"क्यों, किस लिए?" नवाब ने पूछा।

"वे लोग एक मंत्र बताते हैं–अग्नि मीले पुरोहितं–इसका मतलब पुरोहित को ही आग देनी है।" कासिम खाँ ने कहा।

"ओह, ऐसी बात है।" तब तो हम पुरोहित से ही यह काम करा देंगे। यह कहते नवाब ने पुरोहित को बुला भेजा और कहा–"मैंने सुना है, तुम्हारे शास्त्र में लिखा है–अग्नि मीले पुरोहितं! आज से मेरे

कुमकुम गोयंका

हुक्के में आग देने का काम तुम्हारा ही है। समझें।"

"ठीक है।" यह कहकर पुरोहित ने कासिम खाँ के हाथ से हुक्का लिया और उसमें आग के कणों को डाल बोला–"आगे की बात तुम्हीं देख लो।" पुरोहित हुक्के को कासिम के हाथ देने लगा।

"यह क्या करते हो, तुम?" नवाब ने पूछा।

"पुनरेवा वरुन्धे। याने पहिले आदमी को ही यह काम करना है।" पुरोहित यह कहकर चला गया।

बेचारे! कासिम को नवाब के हुक्के में आग देने के काम से छुट्टी नहीं मिली।

* * *

एक बार नवाब रामायण की कथा सुन रहा था। उसमें भरत के द्वारा राम की पादुकाओं का पट्टाभिषेक करने का वर्णन आया। पादुका-पट्टाभिषेक द्वारा राम के प्रति लोगों का प्रेम प्रकट हुआ। इस पर नवाब ने सोचा कि अपनी पादुकाओं का जुलूस निकलवा कर, उनका पट्टाभिषेक करा दें तो उसकी प्रजा और सामंत भी उसे राम जैसा महान आदमी समझेंगे और उसका नाम

हमेशा के लिए इतिहास में अमर रह जाएगा।

यह सोचकर नवाब ने राज्य-भर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि उसकी पादुकाओं का सभी गाँवों में जुलूस निकलेगा। इसलिए सब भेंटें चढ़ा दें और उस जुलूस में शामिल हो जावें।

यह ढिंढ़ोरा सुनते ही लोग परेशान हो गये। कुछ बुद्धिमान लोगों ने मिलकर एक उपाय सोचा कि इस आफ़त से कैसे पिंड छुड़ाया जायें।

दूसरे दिन सुबह नवाब के महल के पास हज़ारों आदमी इकट्ठे हों शोरगुल मचाने लगे।

नवाब ने अपने सिपाहियों को इत्तिला दी—"जाकर पता लगाओ, शोरगुल क्यों होता है?"

सिपाहियों ने लौटकर जवाब दिया—"आपकी पादुकाओं के पट्टाभिषेक की बात सुनकर लोग परेशान हैं। वे पूछते हैं, हुज़ूर! क्या नवाब की तबीयत ठीक नहीं है? वे क्या किसी ख़तरे में हैं? आगे वे राज्य नहीं चलायेंगे? क्या वे वनवास में जाते हैं; वग़ैरह, वग़ैरह!"

नवाब ने सोचा कि रामचन्द्र की तरह वनवास में जाने से ही उसकी पादुकाओं का पट्टाभिषेक होगा। इससे नवाब की आशा पर पानी फिर गया। उसने सोचा कुछ था, और हुआ कुछ!

निराशा के साथ नवाब बोला—"तुम लोग उन से कह दो कि मेरी तबीयत ठीक है। मैं वनवास में नहीं जा रहा हूँ। पादुकाओं का पट्टाभिषेक रोका गया है। इसलिए तुम सब अपने अपने घर लौट जाओ।"

पादुका-पट्टाभिषेक के रुक जाने की बात सुनकर लोगों के दम में दम आ गया और वे ख़ुशी-ख़ुशी अपने अपने घर चले गये।
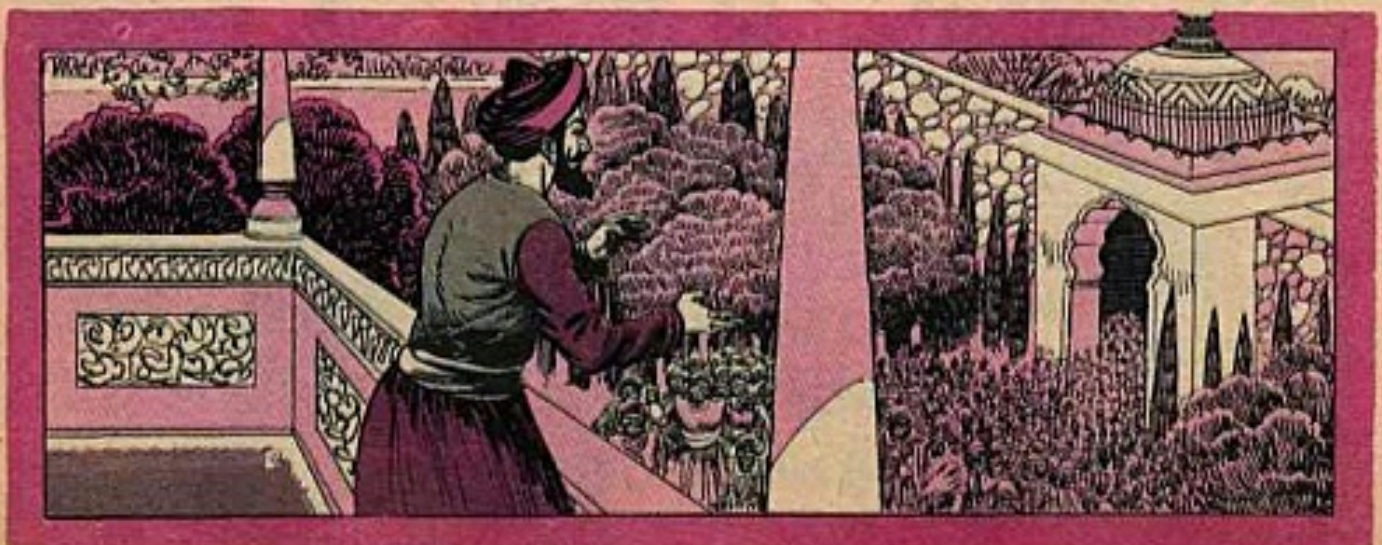
# शनि देवता

उज्जैन नगर पर राजा विष्णुवर्द्धन शासन करता था। उस नगर में देवशर्मा नामक एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह ज्योतिष-शास्त्र में बड़ा प्रवीण था। फिर भी दरिद्रता उसे सता रही थी। उस दरिद्रता से बचने के लिए भी उसने कोई अच्छा प्रयत्न नहीं किया। जो भी मिलता उससे संतुष्ट रहता। गणेशजी की पूजा में अपना समय बिता देता था। दिन-भर गणेशजी के मंदिर में बैठकर, उस देवता पर स्त्रोत्र रचता और पढ़ा करता!

पत्नी उसे समझा देती; किसी के आश्रय में जाकर थोड़ा धन कमा लाओ! देवशर्मा अपनी पत्नी से कहता कि उसकी ग्रह-दशा अच्छी नहीं है, अच्छी दशा के आने तक कोई भी प्रयत्न करे, वह सफल न होगा।

प्रतिदिन प्रातःकाल राज-महल में कुछ ब्राह्मण जमा होते। स्वस्तिवचन सुनाकर, राजा से कुछ पुरस्कार पाकर वापस लौटते। एक दिन देवशर्मा से पत्नी ने कहा कि वह भी राज-महल में जाकर पुरस्कार लावें।

पत्नी से तंग आकर विवश हो एक दिन देवशर्मा प्रातःकाल राज-महल में पहुँचा। लेकिन वह और ब्राह्मणों से कुछ दूर पर खड़ा हो गया। उसने उन ब्राह्मणों के साथ राजा को आशीर्वाद नहीं दिया। उसका उद्देश्य है कि उन स्वस्ति-वचनों का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन राजा ने स्वस्ति-वचन बतानेवाले ब्राह्मणों को ही पुरस्कार दिये। देवशर्मा को कुछ नहीं मिला। राजा के भीतर जाते ही राजभटों ने सब के साथ देवशर्मा को भी बाहर भेज दिया।

फिर भी देवशर्मा अपनी पत्नी को संतुष्ट करने के लिए प्रति दिन प्रातः काल

गंगाधर मिश्र

राजमहल में जाता और खाली हाथ घर लौटता था। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। राजा को देवशर्मा के व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। उसको रोज देखता था। वह ब्राह्मण रोज राजमहल में आता, स्वस्ति-वचन न कहता और पुरस्कार के लिए भी हाथ नहीं बढ़ाता। वह न स्वस्ति वचन कहने आता है और न पुरस्कार के लिए; तो फिर किसलिए आता है? राजा के सामने यही प्रश्न था।

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए राजा ने एक दिन सवेरे अपने भटों को आदेश दिया—"सभी ब्राह्मणों के पुरस्कार लेते समय एक ब्राह्मण कुछ दूर पर हरी शाल ओढ़े खड़ा रहेगा। सबके चले जाने पर उस ब्राह्मण को मेरे कमरे में भेजो।"

एक दिन सब ब्राह्मण स्वस्ति-वचन सुनाकर, पुरस्कार ले जब घर जाने लगे, तब हरी शालवाला ब्राह्मण देवशर्मा भी उनके पीछे खाली हाथ लौटने लगा। लेकिन राजभटों ने उसे डयोढ़ी के पास रोका और राजा के कमरे में पहुँचा दिया।

देवशर्मा ने राजा से कहा—"मैं ग़रीब ब्राह्मण हूँ, दान और पुरस्कार के लिए नहीं आता हूँ।" राजा ने उसकी हालत को जानकर एक चाँदी के पात्र में पाँच सौ चाँदी की मुद्राएँ भरकर देवशर्मा को दिया।

देवशर्मा ने घर जाकर मुद्राएँ पत्नी को दी। वह बहुत खुश हुई।

"हमारी ग्रह-दशा ठीक नहीं है, यह सोचकर हाथ-पाँव बांधे चुप बैठे न रहते तो हमारी ग़रीबी कभी दूर हो जाती। कम से कम आज भी सही, आपने मेरी बात सुन ली।" देवशर्मा की पत्नी ने कहा।

"यह सब गणेशजी की कृपा है।" देवशर्मा ने कहा।

उसी दिन रात को चोर देवशर्मा के घर में घुसकर राजा की दी हुई थाली

और चाँदी की मुद्राओं को उठा ले गये। देवशर्मा की पत्नी के दुख की कोई हद न थी। देवशर्मा ने सांत्वना भरे शब्दों में कहा–"शनि देवता का प्रभाव है। कैसे बच सकते हैं।"

कल अपने यहाँ से इतनी बड़ी रक़म का पुरस्कार ले जाकर आज फिर उसी पुरानी शाल ओढे देवशर्मा को आये देख राजा को आश्चर्य हुआ। उसने ब्राह्मण को बुलाकर पूछा–"क्यों विप्रवर, मैंने सोचा, कल मैंने जो धन दिया, उससे तुम्हारी दरिद्रता जाती रहेगी। आज फिर उसी भेस में कैसे आये हो?"

"महाराज! मेरी दरिद्रता का कारण मेरी ग्रह-दशा का ठीक न होना ही है। मुझे शनि देवता पकड़े सता रहा है। मैं सोना भी छू लूँ तो मिट्टी हो जाता है। मैं अपनी पत्नी की शिकायतों से तंग आकर रोज यहाँ आता हूँ, लेकिन इसीलिए हाथ फैला कर कभी आपसे याचना नहीं करता हूँ। इसका असली कारण यही है। आपने कल जो चाँदी की थाली और मुद्राएँ दीं, वे सब चोरों के हाथ में चली गयी हैं। मुझे थोड़ी-सी दक्षिणा दीजिये, वही काफ़ी है।" देवशर्मा ने जवाब दिया।

राजा को शनि-देवता के प्रभाव पर विश्वास नहीं जमा। उसने सोचा कि अगर वह चाहता है तो देवशर्मा को धनी बना सकता है। शनि-देवता उसे रोक नहीं सकता। यह सोचकर एक और बड़ी थाली में हज़ार चाँदी की मुद्राऐं डाल कर ब्राह्मण के हाथ देते हुए कहा–"अब तुम आराम के साथ ज़िन्दगी बिता सकते हो।"

लेकिन देवशर्मा ने और छे महीनों तक उस धन का उपयोग करना नहीं चाहा। क्योंकि उसके हिसाब के अनुसार और छे महीने तक शनि-देवता का पिंड़ न छूटेगा। यह सोचकर उस थाली को गणेशजी के मंदिर के पास ले आया और अपने धन की रक्षा करने का भार गणेशजी पर डाला। इसके बाद मंदिर की बगल में स्थित पुराने पेड़ के खोखले में उसे खिसका कर अपने घर चला गया।

उस पेड़ के तने में छोटे-बड़े कई खोखले थे। उनमें जहरीले साँप निवास करते हैं। उस पेड़ पर चढ़कर साँप के डँसने से कुछ लोग मर गये हैं। इसलिए उस पर चढ़ने की हिम्मत कोई नहीं करता है। इसलिए देवशर्मा ने सोचा कि उसकी चाँदी की थाली और मुद्राओं के चोरों के ले जाने का डर न रहेगा।

इसके बाद देवशर्मा राजा के पास नहीं गया। राजा को मालूम हुआ कि देवशर्मा की दरिद्रता पहले जेसी ही बनी हुई है। इसका कारण यह है कि देवशर्मा को बताये बिना राजा ने उसके घर की रक्षा के लिए चार सिपाहियों का पहरा रखा। राजा का उद्देश्य यह था कि पहले की तरह उसका दिया पुरस्कार चोरों के हाथ में न जावे और उसका पूरा फल देवशर्मा को ही मिले।

कुछ समय बाद राजा को देवशर्मा की याद आयी। राजा ने सिपाहियों को बुला

कर जब पूछा कि वह ब्राह्मण सुखी है न? तब सिपाहियों ने यही जवाब दिया कि देवशर्मा अब भी दरिद्रता में ही दिन बिता रहा है।

तुरंत राजा ने देवशर्मा को बुला भेजा। वह पहले की तरह पुरानी फटी हरी शाल ओढ़े राजा के सामने आ खड़ा हुआ।

"मैंने जो धन दिया, उसे क्या किया? लगता है, तुमने उसका उपयोग नहीं किया?" राजा ने पूछा।

"नहीं, महाराज। शनि ग्रह की दशा के हटने तक मैंने उस साँपोंवाले पेड़ के खोखले में उसे छिपा रखा है। उसके बाद जरूर उपयोग करूँगा।" देवशर्मा ने जवाब दिया।

राजा ने अपने सेवकों को ब्राह्मण के साथ भेजकर पेड़ के खोखले में चाँदी की थाली को खोजने का आदेश दिया। उन लोगों ने खोखले में ढूंढा, लेकिन थाली और मुद्राओं का कहीं पता न था।

देवशर्मा ने राजा से कहा—"महाराज! वह कहीं नहीं जाएगी। मेरे आराध्य देव गणेशजी उसे सुरक्षित रखेंगे। मुझ पर से शनि-देवता का प्रभाव हटते ही गणेशजी मुझे वापस दे देंगे। आप चिंता न कीजिये।"

"और कब तक तुम पर शनि का प्रभाव है?" राजा ने पूछा।

"और छे महीने तक है, प्रभु।" देवशर्मा ने कहा।

"छे महीने के पूरा होने के पहिले ही मैं तुमको धनी बना देता हूँ। देखूँगा, कैसे शनि रोकता है?" यह कहकर राजा ने एक पात्र में सोने की मुद्राएँ भरवा कर उसे देते हुए सावधान किया—"इस पात्र को घर ले जाकर तुम आज से ही खर्च करना शुरू कर दो। तुम्हें चोरों का डर नहीं होगा। मेरे सेवक दिन-रात तुम्हारे घर का पहरा देंगे। किसी कारण से अगर तुम इस सोने का उपयोग न करोगे तो तुम्हें कठिन दण्ड दिया जाएगा।"

देवशर्मा उस पात्र को लेकर घर आते हुए रास्ते में गणेशजी के मंदिर के पास रुका, अपनी रक्षा करनेवाले उस देवता पर अपना पूरा भार डाला, सोने का पात्र कुएँ के जगत पर रखकर पानी खींच कर नहाने लगा। वह बालटी उठा कर पानी सर पर उँड़ेल रहा था कि पात्र पर एक कौआ आ बैठा और झठ उड़ गया। पात्र लुढ़क कर कुएँ में जा गिरा। नहानेवाले देवशर्मा को इसका बिलकुल ख्याल न था।

लेकिन नहाने के बाद पात्र ढूँढा तो वह नहीं मिला। देवशर्मा ने सोचा कि उसे शनि-देवता ही खुद उठा ले गया होगा। अपनी रक्षा करने की प्रार्थना गणेशजी से करके वह घर चला गया। अपने घर पर पहरेदारों को बुलाकर कहा—"तुम लोगों को मेरे घर का पहरा देने की कोई जरूरत नहीं। चले जाओ। मेरे घर में चोरों के लूटने के लिए कुछ नहीं है।"

सिपाहियों ने यह बात राजा से कही। राजा ने देवशर्मा को बुलवाकर पूछा—"मेरा दिया हुआ सोना भी खो गया? कैसे खोया?"

"महाराज, वह कहीं नहीं जाएगा। मेरे अच्छे दिन अभी तक नहीं आये। इसलिए शनि-देवता ही उठा ले गया होगा।" देवशर्मा ने जवाब दिया।

राजा को क्रोध आया और बोला—"अभागे, तुम्हीं शनि-देवता हो। तुम्हारे हिसाब के अनुसार शनि के दिन बीतने पर मेरा दिया हुआ सब धन नहीं मिला तो तुमको फाँसी के तख़्ते पर चढ़ा दूँगा। जाओ।"

"चोरों के उठाये गये धन की बात में कुछ कह नहीं सकता, लेकिन गणेशजी से छिपाने को जो दिया, वह और शनि-देवता का छिपाया गया धन आवश्य मिलेगा।" यह कहते देवशर्मा राजा से आज्ञा लेकर चला गया।

इसके कुछ दिन बाद एक बड़ा तूफ़ान आया। उस तूफ़ान के आघात से गणेजी के मंदिर का पुराना पेड़ जड़ से उखड गया और टूट कर बगल में स्थित कुएँ पर जा गिरा। उसकी जड़ों के बीच फँसी राजा की दी हुई थाली और हजार मुद्राएँ बाहर निकलीं। कुएँ की मिट्टी निकलवाते समय सोने की मुद्राओं का पात्र भी मिल गया।

देवशर्मा के अंध विश्वास को राजा झूठा साबित न कर सका!

# माता की ममता

एक गाँव में एक ग़रीब औरत थी। उसका एक लड़का था। उसका नाम गोविंद था। माँ उसे बहुत प्यार करती थी। वह बहुत तक़लीफ़ उठाकर काम करती, जो कुछ कमाती, उससे अपने बेटे को पालती। गोविन्द खाता और अपने दोस्तों से खेलता रहता। उसे कुछ दूसरा काम भी न था!

गोविन्द ने देखा कि उसकी उम्रवाले लड़के कोई न कोई काम-धंधा करके अपनी माँ-बाप की मदद करते हैं। लेकिन उसका काम करना माँ को पसंद न था। अपने ही गाँव में अपने लड़के का काम-वाम करना उसे अच्छा न लगा। इस लिए गोविन्द के मन में यह विचार आया कि किसी दूसरे गाँव में जाकर कुछ काम-धंधा ज़रूर करना चाहिए। गोविन्द जानता था कि उसकी माँ इसके लिए भी तैयार न होगी। इसलिए वह एक दिन अपनी माँ से कहे बिना घर से निकल पड़ा।

गोविन्द बहुत दूर चलकर एक गाँव में पहुँचा और वहाँ एक अमीर के घर में काम पर लग गया। अमीर के घर में एक साल तक काम करने के बाद उसे अपनी माँ को देखने की इच्छा हुई। यह बात उसने अमीर से कह दी। अमीर न उसे एक चाँदी का बड़ा टुकड़ा इनाम दिया और कहा कि उसे बड़ी होशियार से घर ले जाओ। गोविन्द के अमीर के घर में रहते समय दो शादियाँ हुईं। उस वक़्त अमीर ने अपने सब नौकरों को इनाम-पुरस्कार खूब दिये। पर उस वक्त अमीर ने गोविंद को कुछ नहीं दिया और न उसने पूछा ही था। गोविन्द ने एक साल तक तनख्वाह भी न लिया था। इसीलिए अब उसे इतनी चाँदी मिली। उसे गोविन्द

शिवकुमार पाठक

अपने तौलिये में बांध कंधे पर डालकर गाँव के लिए रवाना हुआ।

चलते-चलते गोविंद को चाँदी की गठरी का बोझ बढ़ता हुआ सा लगा। इस बोझ के कारण वह तेज़ी से चल भी नहीं पाता था। फिर भी वह इस लिए ढोता था कि इतनी चाँदी को देख उसकी माँ बहुत खुश होगी।

गोविंद जब और आगे बढ़ा तब सामने से घोड़े पर सवार हो आता हुआ एक आदमी दिखाई दिया। उसे देखते ही गोविंद को लगा कि उसके पास भी एक ऐसा घोड़ा होता तो क्या ही अच्छा होता! वह बहुत जल्द अपनी माँ के पास पहुँच सकता। उसने घुड़ सवार से पूछा—"क्यों जी, ऐसे घोड़े का क्या दाम होगा?"

"तुम्हारे पास घोड़ा खरीदने के लिए है ही क्या?" घुड़ सवार ने पूछा।

गोविंद ने घुड़ सवार को चाँदी का टुकड़ा दिखाया।

घुड़-सवार ने सोचा कि यह कोई भोला लड़का है। इसे बड़ी आसानी से धोखा दिया जा सकता है। यह सोचकर वह उस चाँदी को लेकर घोड़ा गोविंद को देने राजी हो गया। गोविंद ने अपनी सारी चाँदी घुडसवार को दी और उसकी मदद से घोड़े पर जा बैठा।

गोविंद के सवार होते ही घोड़ा तेज़ी से दौड़ने लगा। उसकी चाल को कम करना या उसे अपनी इच्छा के अनुसार चलाना भी उससे संभव न हुआ।

घोड़ा दौड़ता जा रहा था। लड़का गिर जाने के डर से चिल्लाता जाता था। एक जगह गाय चरानेवाले ने गोविंद की हालत पर तरस खाकर लाठी उठाकर घोड़े को रोका, लेकिन रुकने के पहले पिछली टाँगों को ऊपर उठाकर गोविंद को नीचे गिराया।

इसके बाद गाय चरानेवाले ने गोविंद को उठाकर पूछा–"अरे, तुम देखने में लड़के लगते हो, तुम घोड़े पर सवारी करते हो? असल में यह घोड़ा तुम्हें कैसे मिला?"

गोविन्द ने अपनी सारी कहानी उस आदमी से बतायी।

"तुम ने बड़ी भूल की। इस घोड़े को देख तुम्हारी माँ कैसे खुश होगी? इससे अच्छा यह होता कि किसी सीधी सादी गाय को हाँक ले जाते तो तुम्हें दूध देती और तुम्हारी माँ खुश होती। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं, मुझे यह घोड़ा देकर अच्छी गाय को ले जाओ। तुम्हारी माँ तुम्हारी तारीफ़ करेगी।" गाय चराने वाले ने कहा।

गोविंद ने सोचा कि गाय बछड़ा देगी, घर भर गायों की भीड़ लग जाएगी। यह सोचकर वह घोड़ा देकर गाय लेने को तैयार हो गया। लेकिन गाय चरानेवाले ने उसे एक सूखी बूढ़ी गाय देकर घर भेज दिया।

गोविंद गाय हाँकते आगे बढ़ा। दुपहर के होते ही उसे जोरों की भूख लगी। सोचा कि शाम तक सब्र करे तो गाय दूध देगी और पेट भरा जा सकता है।

सूरज के डूबते समय तक गोविंद एक बकरियों की रेवड़ के पास पहुँचा। बकरिये से एक लोटा माँगकर गोविंद ने गाय के दूध दुहने की कोशिश की। दूध तो न निकला, उल्टे वह उसे लात मारने लगी।

इसे देख बकरियोंवाला हँस पड़ा और पूछा–"यह बूढ़ी गाय है। दूध कैसे देगी? तुमने इसे कहाँ पायी?"

गोविंद ने उसे अपनी सारी कथा सुनायी। इस पर सहानुभूति दिखाते हुए बकरीवाले ने कहा–"बेचारे, तुमको धोखा दिया है किसी ने! इस गाय को यहाँ छोड़कर एक अच्छी दुधारू बकरी ले जाओ,

में देता हूँ। कुछ दिनों में तुम्हारे घर बकरियों की रेवड़ बन जाएगी।" बकरी वाले ने कहा।

बकरीवाले ने उसी बकरी का दूध दुहकर गोविंद को दिया, जिसे उसने गाय के बदले देने की बात कही थी। गोविंद खुश हुआ और उस बकरी को हाँकते अपने रास्ते जाने लगा।

थोड़ी दूर जाने के बाद बकरी गोविंद के साथ न चलकर पीछे जाने की कोशिश करते हुए 'में में' करने लगी। उससे खींचा-तानी करने की ताक़त भी गोविंद में न रह गयी थी।

इतने में एक आदमी मुर्गे को अपनी बगल में दाबे उस ओर से आ निकला। उसने पूछा–"क्यों बे लड़के, उस बकरी से खींचातानी क्यों करते हो? यह क्या तुम्हारी नहीं? कहाँ जाते हो?"

गोविंद ने उसे भी अपनी सारी कहानी पहले से अंत तक सुनायी।

मुर्गेवाले ने उसकी कहानी सुनकर कहा–"तुम्हारा गाँव यहाँ से बहुत दूर है। इस बकरी को तुम जबर्दस्ती वहाँ तक खींच कर कैसे ले जा सकोगे? इसे मुझे देकर इस मुर्गी को ले जाओ। यह रोज दस अंडे देगी। अंडों से बच्चे निकलेंगे; देखते-देखते

तुम्हारा घर मुर्गियों से भर जाएगा। तुम्हारी माँ खुश होगी।"

गोविंद को यह सलाह अच्छी लगी। उसको भी मालूम न था कि उस आदमी के हाथ में मुर्गा है और वह अंडे नहीं देता। गोविंद झट बकरी उसे देकर मुर्गा ले रवाना हुआ।

कुछ और आगे बढ़ने पर उसने एक गाँव में एक आदमी को छुरियों का सान धरते देखा। सामने कोई पुराना पत्थर था जिस पर एक एक करके सान धरता था। गोविंद ने ठहर कर उसका काम देखा और पूछा—"तुम क्यों ऐसे करते हो?"

"छुरियों को तेज कर रहा हूँ। इन सब छुरियों का सान धरूँ तो एक रुपया मिल जाएगा। यह तो दो-चार घंटे का काम है।" सान धरनेवाले ने कहा।

"मुझे भी एक ऐसा पत्थर मिल जाय तो क्या ही अच्छा हो?" गोविंद ने कहा।

"मेरे पास एक और पत्थर है, चाहोगे तो बेच सकता हूँ।" सानवाले ने कहा।

"खरीदने के लिए मेरे पास इस मुर्गी के अलावा कुछ नहीं है।" गोविंद ने कहा। "अच्छा, वही दो।" यह कहकर सान धरनेवाले ने मुर्गे को लेकर एक सान-पत्थर गोविंद को दिया।

गोविंद उस पत्थर को ले गाँव पहुँचा। अपनी माँ को, चाँदी के बड़े टुकड़े को कैसे सान धरनेवाले पत्थर में बदला है, सारी कहानी सुनायी।

"अरे पगले! इतनी चाँदी खोकर इस बेकार पत्थर को उठा लाये हो। कोई बात नहीं, तुम वापस आये हो, बस मुझे और क्या चाहिए?" माँ ने गोविंद से कहा।

इसके बाद माँ ने गोविंद को काम में प्रवेश करने दिया। गोविंद बड़ा अच्छा काम करनेवाला था। इसलिए माँ से भी ज्यादा कमाकर उसे सुखी रखने लगा!

# जैसा राजा, वैसा मंत्री

एक मूर्ख राजा था। उसके एक महामूर्ख मंत्री था। एक ब्राह्मण रोज राजा के दरबार में आता, तिथि और वार बताकर चला जाता। एक दिन राजा के मन में संदेह पैदा हुआ—"यह ब्राह्मण प्रति दिन तिथि और वार बताकर चला जाता है। हमने तो कभी उनको अपनी आँखों से नहीं देखा है!" राजा ने मंत्री से पूछा!

"उस ब्राह्मण से ही पूछेंगे।" मंत्री ने सलाह दी।

दूसरे दिन दरबार में ब्राह्मण के आते ही राजा ने उससे पूछा—"देखोजी, तुम रोज हमको तिथि और वारों के नाम तो बता देते हो। लेकिन हमें उन्हें कभी नहीं दिखाया। हमने अपनी आँखों से नहीं देखा। एक बार लाकर दिखाओ तो!"

ब्राह्मण घबरा उठा। उसका दिल बैठ गया। तिथि और वार कैसे होते हैं, उसने भी कभी देखे न थे। अगर यह कह दे कि मैंने नहीं देखा है, तो राजा कहेंगे—"तुम्हीं नहीं जानते, तो हमें कैसे बताते हो?" इसलिए उसने हाथ मलते हुए कहा—"महाराज! गरीब हूँ। तिथि और वारों को लाकर दिखाना मेरे वश की बात नहीं है!"

"उनका मूल्य बहुत ज्यादा होगा!" मंत्री ने कहा। "चाहे, उसका मूल्य जो भी हो, चिंता की बात नहीं, खजाने से इस ब्राह्मण को दो हजार मुद्राएँ दिलवा दो।" राजा ने मंत्री को आज्ञा दी।

मंत्री ने मुद्राएँ मँगवाकर ब्राह्मण के हाथ देते हुए कहा—"तिथि और वारों को जहाँ तक हो सके, जल्दी मँगवाकर दिखाने का भार तुम्हारा है!"

ब्राह्मण मुद्राओं की गठरी बाँधकर तिथि, वार को खरीद लाने रवाना हुआ।

रामनरेश शर्मा

उस रात को बनिये ने एक पिंजड़े में दो चूहों को फँसाया। एक छोटी सी पेटी में रखकर ताला लगाया। ब्राह्मण के आते ही दो हज़ार मुद्राएँ लेकर पेटी उसके हाथ सौंपते हुए कहा—"इनको सीधे अपने राजा के पास ले जाकर वहीं खोल दो। रास्ते में खोलो मत। लो यह चाभी।"

ब्राह्मण बड़ी खुशी से घर लौटते सोचने लगा—"बनिये ने बीच रास्ते में पेटी खोलने से मना किया है। इन तिथि और वारों को पहले मैं न देखूं तो राजा के सवालों का जवाब कैसे दे सकता हूँ? इसलिए पहले मेरा देखना जरूरी है।" यह सोचकर उसने पेटी खोलने का निश्चय किया।

उस वक्त वह ब्राह्मण एक पहाड़ी रास्ते से चलने लगा। दूर तक दृष्टि उठाकर देखा। कोई दिखाई न दिया। तिथि, वार को अपनी आँखों से देख उनका समाचार जानने का यही अच्छा मौक़ा समझकर, ब्राह्मण ने पेटी को एक चट्टान पर रखा और अपनी कमर में कसी चाभी निकालकर पेटी खोली। दूसरे क्षण पेटी में से दो चूहे बाहर कूदकर बिजली की तरह गायब हो गये। चालीसे के कारण

उसे मालूम न था कि वे कहाँ बिकते हैं। लेकिन यह बात राजा और मंत्री से कहने में उसे डर लगता था।

"अजी, तुम्हारी दूकान में तिथि और वार बिकते हैं?" ब्राह्मण ने कई दूकानदारों से पूछा। सब ने कहा—"हमारे पास नहीं हैं।" कुछ लोग ब्राह्मण की बातों पर हँस दिये। ब्राह्मण ने कई गाँव और शहर छान डाले। आखिर एक गाँव के बनिये ने कहा—"क्यों नहीं हैं, अभी तक माल अटारी से नीचे उतारा नहीं, उतारकर रख दूंगा। कल आकर ले जाओ।" यह बात सुनकर ब्राह्मण की जान में जान आ गयी।

और चूहों के तेज़ी से कूदते उनकी आकृतियों को ब्राह्मण पहचान नहीं पाया ।

ब्राह्मण का कलेजा धक्‌धक् करने लगा । इतनी मुद्राएँ खर्च करके खरीदे गये तिथि, वार गायब हो गये हैं, यह बात राजा से कह दे तो वे न मालूम क्या समझेंगे ? तो भी सच्ची बात राजा से कह देनी है ! इसलिए राजा के पास पहुँचकर ब्राह्मण ने सारी बातें बताकर प्रार्थना की—"महाराज, भूल मेरी है ! मैंने यह सोचकर पेटी खोली कि बनिये ने सही तिथि, वार दिये हैं कि नहीं, देख लूं, पेटी खोली, नहीं तो खोल न देता ।"

"अरे भोले ब्राह्मण ! इस छोटी-सी बात के लिए दुखी क्यों होते हो ? पहाड़ को खुदवाने से मिल जायेंगे ! जायेंगे कहाँ ?" राजा ने समझाया ।

पहाड़ खुदवाने का काम खुद पास रहकर कराने के विचार से राजा ब्राह्मण और मजदूरों को साथ ले वहाँ पहुँचा जहाँ तिथि-वार भाग गये थे । पहाड़ खोदने का काम शुरू हो गया ।

एक महीना बीत गया । पहाड़ खोदने का काम और भी कई साल का बाक़ी पड़ा था । इतने में मंत्री के यहाँ से एक आदमी आया और बोला—"महाराज,

मंत्री आफ़त में फँस हुए हैं। जैसा आप आज्ञा देंगे, वैसा करने का इंतजार कर रहे हैं।"

"क्या हुआ?" राजा ने पूछा।

"महाराजा के नगर से बाहर जाते ही महारानी की बड़ी दासी को बिच्छू ने डंक मारा। जहर के चढ़ते देख मंत्री ने दासी का पैर कटवा दिया और जहर के चढ़ने से रोका। बाद को बिच्छू को ढूँढा गया। उसका कहीं पता न चला। वह महल में रहेगा तो और लोगों को डंक मारेगा। यह सोचकर मंत्री ने महल में आग लगवा दी। महल की आग के न बुझते देख मंत्री ने पूरब के तालाब की मेंड में सुराख करवा दिया। इससे आग तो बुझ गयी, लेकिन पूरब के खेत सब सूख गये हैं। उनकी रक्षा कैसे हो, मंत्री समझ नहीं पा रहें हैं। आप समय पर उनके पास नहीं थे, इसलिए वे बहुत ही परेशान हैं। इस हालत में वे आप जैसा कहे, करने को तैयार बैठे हैं।" दूत ने राजा से कहा।

राजा थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर बोला–"अरे, इस छोटी-सी बात के लिए परेशान हो जाने की क्या ज़रूरत है। पश्चिम के खेत कटवा कर, उन डंटलों से पूरब के खेतों में पंदाल बनवाने को कह दो। ऐसा करने से पूरब के खेत सूखेंगे नहीं। समझें, जाकर मेरी आज्ञा सुना दो।" यह जवाब देकर राजा ने दूत को भेज दिया।

यथा राजा, तथा मंत्री ने राजा की आज्ञा का पालन किया। उन दोनों की अक्लमंदी के परिणाम स्वरूप राज्य-भर में धान न हुआ। राजमहल जल कर भस्म हो गया। रानी की बड़ी दासी लंगड़ी हो गयी। पहाड़ी रास्ता भी चलने-फिरने लायक़ न रहा। उस राज्य में जीना मुश्किल पाकर धूर्त ब्राह्मण दूसरे देश में चला गया।

कृष्ण के परामर्श से महर्षि बहुत खुश हुए और अपने साथ लाये बदरी फल, उन्हें समर्पित कर कहा–"हम लोग एक अत्यावश्यक कार्य पर ही आपकी सेवा में आये हैं। भूदेवी का पुत्र नरक राक्षसों का नेता है। वह उद्दण्ड पराक्रमी है। वह समुद्रों को सुखा सकता है, धरती को हिला सकता है, पर्वतों को धँसा सकता है। वह सभी लोकों को थर्रा दे रहा है। एक बार बदरीवन में आया और यज्ञ कार्य में निमग्न हमें देख उसने पूछा कि देवताओं के प्रति यज्ञ न करें, बल्कि उसके प्रति करें। जब हमने अस्वीकार किया तब रुष्ट हो, उसने अपने अनुचरों के द्वारा हमारी यज्ञाग्नि को बुझवा दिया और हमारी सारी सामग्रियों को ध्वंस किया। साथ ही हमारी नारियों को बंदी बनाकर ले गया। इससे हमारा कर्म-कांड तो भग्न हो गया और हमारी इज्जत धूल में मिल गयी। हमें असहनीय दुख और भय लगे हैं। हमारी रक्षा आप ही को करनी है।"

मुनियों की बातें सुनकर कृष्ण को आश्चर्य और नरकासुर पर क्रोध भी आया, लेकिन थोड़ी देर तक मौन और निश्चल सोचते रह गये। इस पर मुनि भयभीत हुए, उन्हें संदेह भी हुआ और एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

उस वक़्त सात्यकी इत्यादि यादव प्रमुखों ने भी कृष्ण को प्रेरित किया। कृष्ण ने मुनियों की तरफ़ मुखातिब हो

## २०. नरकासुर का वध

मुनियों के जाते ही देवेन्द्र सभी दिक्पालकों को साथ लेकर द्वारका पहुँचे। कृष्ण ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। इन्द्र ने समस्त यादवों से आलिंगन कर उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया। इसके बाद सुधर्म सभा-भवन में सभी उचित आसनों पर विराजमान हुए।

इन्द्र ने कृष्ण के हाथ को अपने हाथ में लेकर गरुड़ को दिखाते हुए कहा–"आपको देखने के लिए मैं जिस कारण से आया, वह बता देता हूँ, सुनिये :–

"नरक नामक दैत्य नेता ने ब्रह्मा से वर प्राप्त कर देवताओं पर आक्रमण किया और युद्ध में सब को बुरी तरह से हराया। उसके आतंक से घबराकर घर-द्वार सब छोड़-छाड़कर हम लोग मानव-लोक में भागकर आये हैं। हमारे घरों में प्रवेश करके उसने हमारी सारी संपदाएँ लूट लीं। हम अपनी कठिनाइयों का वर्णन क्या करें! बड़े-बड़ों के लिए भी असाध्य अतिथि देवी के कुंडलों को भी उसने छीन लिया। मुनियों के आश्रमों को तहस-नहस किया। जगत की रक्षा के लिए कटिबद्ध आपने कई राक्षसों का वध किया। यह बात सुनकर वह आपको हराने के लिए छटपटा

उन्हें अभय प्रदान करते हुए कहा–"आप लोग अन्यथा न समझिये। उस राक्षस की करतूतें जानने के पश्चात् मेरा मन अत्यन्त विकल हुआ। मैं निश्चय ही उस राक्षस का अंत करूँगा। आप लोगों को डरने की आवश्यकता नहीं। आप लोग निश्चिंत हो अपने स्थान लौटकर अपने कार्यों में निमग्न हो जाइये।"

कृष्ण की बातें सुनकर मुनियों के मुख खिल उठे। अनेक प्रकार से उन लोगों ने कृष्ण का अभिनंदन किया, उनसे आज्ञा लेकर सभी मुनि बदरिकाश्रम के लिए रवाना हुए।

रहा है। इसलिए आप ही को पहले उस पर हमला करके उसका अंत करना अच्छा होगा। इससे सभी लोगों का भला होगा। गरुड़ को देखिये! आपका वाहन बनने के विचार से मेरे साथ आया है। हमारी प्रार्थना सुनिये।"

इंद्र की बातें सुनकर कृष्ण ने यों कहा– ये सारी बातें मैंने मुनियों से पहले ही सुन ली हैं। तुम्हारे आगमन से मेरा निश्चय और भी दृढ़ हो गया। अभी रवाना होकर प्राग्ज्योतिषपुर चलेंगे।" यह कहकर कृष्ण आसन से उठे और यादव प्रमुखों को विदा दी। अपने चक्र आदि आयुधों को लेकर सत्यभामा को खबर भेजी और उनके साथ गरुड़-वाहन पर चढे। बुजुर्गों ने उन्हें आशीर्वाद दिये, बंदी-जनों ने स्तोत्र पाठ किये, तूर्यनाद हुए, इंद्र आगे-आगे जा रहे थे, कृष्ण भी उनके पीछे रवाना हुए। थोड़ी दूर तक जमीन पर यात्रा करके फिर आकाश-मार्ग पर यात्रा चालू की।

कृष्ण को अकाश से ही प्राग्ज्योतिषपुर दिखाई दिया। उसमें किसी आदमी के लिए प्रवेश करना संभव न था। कृष्ण ने जान लिया कि किस तरह उसकी रक्षा सैनिकों द्वारा हो रही है। नरकासुर के महल की रक्षा करनेवाले राक्षस वीरों को देखा। कृष्ण ने इंद्र को वहीं रोका, आगे बढ़कर उन्होंने राक्षसों पर हमला कर कई लोगों को मार डाला।

मुरासुर कृष्ण से जूझ पड़ा। दोनों में भयंकर लड़ाई हुई। आखिर कृष्ण ने एक अस्त्र से मुरासुर का सर काट दिया। इसके बाद निसुंद नामक राक्षस ने लड़ाई शुरू की और सत्यभामा के हाथ को घायल किया। हाथ से खून बहने लगा। इस पर कृष्ण नाराज हुए, अपने तेज बाण चलाकर उसके हाथ और सर काट डाले। इसके

हराकर मैंने तीनों लोकों को थर्रा दिया है। मेरे सामने बड़े-बड़े पराक्रमी वीर भी ठहर नहीं पाते! तुम किस खेत की मूली हो? यहाँ किस लिए आये हो? यह बड़ा पक्षी तुमको कहाँ से मिला? यह औरत कौन है? आराम से साफ़-साफ़ कहो! तुमको अभी मारकर इस औरत को अपने वश में कर लूंगा। भागना नहीं; ठहरकर लड़ो!"

नरक की बातें सुनकर कृष्ण ने हँसते हुए कहा—"मैं भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध हूँ। मैं नहीं जानता कि तुमने मेरे बारे में सुना है कि नहीं! मेरा नाम वासुदेव है। इनका नाम सत्यभामा—मेरी पत्नी है। यह पक्षी—पक्षी-जाति का राजा गरुड़ है, मेरा वाहन है! मैं यहाँ पर तुम्हारा वध करके जगत् का कल्याण करने आया हूँ।"

नरकासुर मुस्कुराते हुए बोला—"ओह! तुम्हीं वासुदेव हो। मैं तुमसे लड़ने के लिए बहुत दिनों से इंतज़ार कर रहा था। तुम अपनी सारी ताक़त लगाकर लड़ो। मेरे हाथों में पड़कर तुम जान से भाग नहीं सकते।" यह कहते कृष्ण के साथ उसने लड़ाई छेड़ दी। उन दोनों के बीच जो युद्ध हुआ, वह राम-रावण युद्ध की तरह

बाद हयग्रीव, अघोरपाल, विरूपाक्ष, प्रापण, पंचजन वग़ैरह चौरासी हज़ार राक्षस वीरों ने कृष्ण पर आक्रमण किया और उनके हाथों मर गये।

नगर द्वार की रक्षा करनेवाले सभी राक्षसों का संहार करके कृष्ण जब उस द्वार के निकट जाने लगे तब राक्षसों की सेना उन पर टूट पड़ी। कृष्ण ने राक्षसों के उस समूह का बड़ी आसानी से अंत किया। इतने में नरकासुर ही युद्ध के लिए तैयार होकर आया। युद्ध के लिए अकेले आये हुए कृष्ण को देख बोला—"मुझे नरक कहते हैं। इंद्र और बाक़ी देवताओं को

अवर्णनीय है, महा भयंकर भी। इस युद्ध में कृष्ण खूब घायल होकर बेहोश हो गये।

कृष्ण को देख सत्यभामा घबरायी नहीं। कृष्ण के माथे पर जो बाण चुभ गया था, उसे हटाकर खून के निकलने से दबा रखा। कृष्ण का उपचार किया। गरुड़ ने अपना पंख फड़फड़ाकर हवा की, जिससे कृष्ण को थोड़ा आराम मिला। होश में आने पर कृष्ण ने सत्यभामा की ओर देखकर कहा—"मैं थक गया हूँ। थोड़ी देर तुम युद्ध करो।" सत्यभामा ने तुरंत कृष्ण के धनुष और तरकश अपने हाथ में लिये।

सत्यभामा ने नरक पर जब एक साथ बाणों की वर्षा की तब नरक नाराज़ होकर बोला—"कृष्ण ने मेरे साथ युद्ध करना बंद करके मुझे जीतने के लिए एक औरत को खड़ा किया! छिः छिः!" यह कहते उसने सत्यभामा पर लगातार बाण छोड़े। वे सब बाण सत्यभामा की छाती, हाथ और बगल में चुभ गये। फिर भी उसकी परवाह किये बिना रोश में आकर सत्यभामा ने नरक का झंड़ा तोड़ दिया, उसके रथ के घोड़ों और सारथी को मार गिराया। नरक जब भी बाण उठाता, सत्यभामा उसे तोड़ देती। इस तरह तीन बार जब बाण टूट गये तब नरक ने एक गदा लेकर उन पर ज़ोर से फेंका। सत्यभामा ने उसे बीच में ही टुकड़े टुकड़े कर दिया। इस तरह नरक जो भी आयुध फेंकता उसे वह तोड़ देती।

सत्यभामा ने जो अद्भुत युद्ध किया, उस पर खुश होकर कृष्ण ने उनका आलिंगन किया। उनके माथे पर का पसीना पोंछते हुए कहा—"तुम थक गयी हो। अब युद्ध रोको।" यह कहते उनकी प्रशंसा की और अपने कंठ के रत्नों की माला उनके गले में डाल दी। उस माला

को रुक्मिणी और सत्यभामा बहुत दिनों से पाना चाहती थीं। अब तक वह दोनों को प्राप्त नहीं हुई थी। ऐसी माला अब सत्यभामा को बड़ी आसानी से मिल गयी।

कृष्ण ने सत्यभामा के हाथ से धनुष लेकर फिर से लड़ाई शुरू की। इस बीच में नरकासुर ने एक दूसरे रथ पर चढ़कर कृष्ण, सत्यभामा और गरुड़ पर बाणों की वर्षा की। कृष्ण ने उसके नये रथ, घोड़े और सारथी को भी नष्ट किया। तब नरक क्रोधावेश में आकर गदा हाथ में ले रथ से नीचे उतर आया और कृष्ण की छाती का निशाना लगाकर फेंका। कृष्ण ने बड़ी आसानी से उसे तोड़ . .। नरक ने कृष्ण पर कई अस्त्र फेंके और आखिर पेड़ और पत्थर फेंके। लेकिन कोई फ़ायदा न रहा।

अंत में कृष्ण ने नरक पर अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। उसने नरक के सीधे दो टुकड़े कर दिये। नरक की मृत्यु से पृथ्वी पर अत्याचार का अंत हो गया। भूदेवी मानवी के रूप में आकर नरक के शव से गले लगकर रोने लगी। इसके बाद नरक के कानों के दिव्य मणिकुंडल निकालकर कृष्ण के पास आयी और हाथ जोड़कर बोली—"तुमने ही मेरे पुत्र को दे दिये! तुमने ही उसे दुनिया के लिए कांटा मानकर मार डाला। अब देवता और मुनियों को सुख से रहने दो। ये इंद्र को हराकर लाये गये कर्ण-कुण्डल हैं। इनको ले लो। नरक के लड़के की रक्षा करके यह राज्य उसको दे दो।"

कृष्ण ने मान लिया। भूदेवी अंतर्धान हो गयी। कृष्ण ने नरकासुर के शव की अंत्येष्टि-क्रियाएँ कीं। इसके बाद नरक के पुत्र भगदत्त को गद्दी पर बिठाया।

नगर में अपार निधियाँ थीं। वे सब दिक्पालकों को हराकर लायी गयी थीं।

नरक के कर्मचारियों ने वे सब लाकर कृष्ण को समर्पित किया।

मणिशैल के पास सोलह हजार एक सौ देवतानारियाँ नरक के द्वारा बंदी बनाकर रखी हुई थीं। श्री कृष्ण पत्नी समेत वहाँ गये। उन स्त्रियों ने कृष्ण को देखकर कहा–"हम नरक के द्वारा बंदी बनायी गयी देवतानारियाँ हैं। एक बार नारद ने हमारे दुख को देख हमें सांत्वना देते हुए कहा था कि तुम लोग चिन्ता न करो। भगवान विष्णु मानव का अवतार लेकर यहाँ पर आएँगे और नरक का वध करके तुम्हारे पति बनेंगे। हम इसी आशा से आज तक यह यातनाएँ भोगती रहीं। अब हम धन्य हो गयीं।"

कृष्ण ने उनकी अभिलाषा मान ली, प्रेम से उनकी ओर देखा। उनके लिए पालकियाँ लाने राक्षसों को आदेश दिया। इसके बाद कृष्ण ने सारा मणिशैल देखा, उसके एक शिखर को पेड़ों और पक्षियों के साथ तोड़ दिया और उसे गरुड़ पर रख दिया। गरुड़ ने उसे बड़ी आसानी से ढोया। पहाड़ी शिखर के साथ कृष्ण भी सत्यभामा समेत उस पर सवार हो इंद्र के नगर के लिए प्रस्थान हुए। वहाँ पर शचीदेवी और इंद्र थे। शचीदेवी ने सत्यभामा से गले लगाया। कृष्ण ने इंद्र को नमस्कार करके अपने साथ लाये हुए कर्ण-कुंडल उसको दिया। कृष्ण ने नरक को मार डाला था, इस पर शची ने सत्यभामा की प्रशंसा की।

"मैं तुमको ऐसी वस्तु देना चाहती हूँ जो तुम्हें बहुत ही प्रिय हो।" शचीदेवी ने सत्यभामा से कहा।

"मुझे किसी बात की कमी नहीं; बहन। मुझे केवल तुम्हारा स्नेह चाहिए। मैं और कुछ नहीं चाहती!" सत्यभामा ने कहा।

# अरण्य पुराण

[ २३ ]

मौवली अब वानरों की ज़रा भी परवाह नहीं करता। वानर मौवली का नाम सुनकर थर थर कांपते हैं। लेकिन मौवली जब खंडहरों में पहुँचा तब वानरों का दल अरण्य के कुछ प्रदेशों पर हमला करने गया था। इसलिए खण्डहर सुनसान और निर्जन थे। रात का सुहावना वक़्त था। सब ओर चाँदनी छिटक रही थी।

कावा महल के रनिवास की तरफ़ रेंग कर, उसके बीच में स्थित सीढ़ियों पर से नीचे की ओर सरकने लगा। सीढ़ियाँ भी उजड़ी हुई थीं।

"हम सब एक हैं—अलग नहीं।" मौवली सर्पों की भाषा में बोला। सीढ़ियों को पार करने के लिए उसे हाथ और पौरों से रेंगना पड़ा। सीढ़ियों के निचले हिस्से का रास्ता ढलाऊँ था। वह टेढा-मेढ़ा भी था। कुछ दूर आगे बढ़ने पर पत्थरों की दीवार में से एक बड़ी जड़ बाहर निकली दिखाई दी। उस जड़ के पेड़ का मूल तीस फ़ुट ऊँचाई पर था। एक संकरीली राह में घुसकर नीचे के कमरे में उन दोनों ने क़दम रखा। उसे देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कमरा विशाल था। छत से जहाँ-तहाँ पेड़ों की जड़ें लटक रही थीं। छत में छेद हो जाने के कारण किरणें कमरे में छिटक रही थीं।

"यह गुफ़ा तो बड़ी सुरक्षित है। लेकिन रोज आने-जाने के लिए दूर पड़ती है। यहाँ पर हमें देखने को क्या है?" मौवली ने पूछा।

"मैं जो हूँ।" कमरे में से एक कंठ सुनाई दिया। कोई सफ़ेद चीज़ हिलते

सफ़ेद फन मौवली की बात का जवाब दिये बिना बोला–"नगर कैसा है? सौ हाथी, बीस हज़ार घोड़े, अनगिनत पशुओं से भरा वह महानगर कैसा है? बीस राजाओं के महाराजा द्वारा शासित नगर! मुझे यहाँ पर बहरापन आ रहा है। उनकी लड़ाइयों की दुंदुभियों की आवाज़ सुनकर एक जमाना हो गया।"

"ऊपर का अरण्य बचा है। तुम्हारी सारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं केवल गजराज और उसके पुत्र हाथियों को जानता हूँ। एक गाँव के सभी घोड़ों को बाघीर ने मारा डाला है। लेकिन...राजा क्या है?" मौवली ने पूछा।

"अरण्य के बीच राजा के पहरेवाले बुर्जोंवाले दर्वाजों से भरा नगर कहाँ जाएगा? मेरे पिता के पिता अंडे से निकलने के पहले बनाया गया नगर है वह। मेरे बेटों के बेटे मेरे जैसे सफ़ेद और फीके पड़ने तक वह नगर रहेगा। याग सूर्य का पुत्र विजय, उसका पुत्र चंद्रबीज, उसके पुत्र सलोन्धी ने बाप्पारावल के जमाने में उसे बनवाया था। तुम लोग किसके पशु हो। स्पष्ट कह दो।" सफ़ेद फन ने पूछा।

मौवली को दिखाई दी। मौवली ने अपनी जिन्दगी में कभी इतने बड़े नाग को नहीं देखा था। यह लगभग आठ फुट लंबा था। अंधेरे में रहने के कारण वह पुराने दांत के रंग जैसा हो गया था। उसके खुले फन पर कृष्ण-पाद मैले पीले रंग के से दीखते थे। उसकी आँखें चमक रही थीं। देखने में वह सुन्दर और आकर्षक भी लगता था।

"शिकार खेलना है।" मौवली ने कहा। वह सदा कटार को अपनी नाभि में छिपाये घूमा करता था, लेकिन शिष्टता का व्यवहार करना वह भूल गया था।

मौवली ने काबा की ओर घूमकर कहा–"मैं उलझन में फँस गया हूँ। उसकी एक भी बात मेरी समझ में नहीं आती।"

"मेरा भी यही हाल है। वह बड़ा वृद्ध है।" काबा ने मौवली से कहा। फिर यों सफ़ेद फन से बोला–"नाग पितामह! इस प्रदेश में जमाने से अरण्य ही रहता आया है।"

"तब तो, मेरे सामने बैठा हुआ वह आदमी कौन है? इसको राजा का नाम मालूम नहीं। डरना भी यह नहीं जानता। मानव के मुँह से साँप की बोली बोलता है। सर्प की जीभ के साथ कटार भी रखता है। कौन है, यह? कोई विचित्र प्राणी मालूम होता है? इसका वृत्तांत सुनाओ।" सफ़ेद फन ने पूछा।

इस सवाल का मौवली ने जवाब देते हुए पूछा–"मुझे मौवली कहते हैं। मैं जंगल का निवासी हूँ। भेड़िये मेरे बंधु हैं, यह काबा मेरा भाई है। नाग पितामह, तुम कौन हो?"

"मैं राजा के खजाने का रक्षक हूँ। जिन दिनों में मेरा चमड़ा काला था, उन्हीं दिनों में करुण राजा ने यह छत बनायी। चोरी करनेवालों को मौत की सजा देने मेरे लिए उन्होंने यह इंतजाम किया है। इसके बाद पत्थर के दर्वाजे को भी निधि के भीतर धंसाया है। उस वक़्त ब्राह्मणों ने गान किया है।" सफ़ेद फन ने कहा।

मौवली अपने आप सोचने लगा–"ओहो! इसमें कोई खतरा है। मानवों की भीड़ के साथ रहते वक्त एक ब्राह्मण की बात मैंने जान ली थी।"

सफ़ेद फन कहता जा रहा था:–

"मेरे यहाँ आने के बाद पाँच बार शिला को उठाकर, और निधि भीतर पहुँचा दी गयी है। ऐसी बड़ी निधि और कहीं नहीं है। सौ राजाओं की निधि!

लेकिन अंतिम बार शिला को उठाये बहुत समय हो गया है। शायद मेरा नगर मुझे भूल भी गया हो, क्या पता!"

"असल में नगर ही नहीं है। ऊपर देखो! ऊपर दिखाई देनेवाली, पत्थरों को फाड़कर उतरनेवाली पेड़ों की जड़ें हैं। पेड़ और आदमी साथ साथ नहीं बढ़ते।" काबा ने भड़कानेवाले स्वर में कहा।

सफ़ेद फन ईर्ष्या से बोला–"दो, तीन बार मनुष्यों ने यहाँ पर प्रवेश किया। अंधेरे में रेंगकर उनके पास पहुँचने तक वे लोग कुछ बोले नहीं। उसके बाद थोड़ी देर तक ही वे बकते रहें। तुम लोग यहाँ आकर सब तरह के झूठ बोल रहे हो। एक मनुष्य, एक सर्प, यह कहते हैं कि मेरा नगर नहीं है, मेरी रक्षा करने का काम समाप्त हो गया है, और मैं इस पर विश्वास करूँ! शिला को उठाकर, ब्राह्मण गान करते हुए उतरकर आवे और मुझे गरम दूध देकर, रोशनी में ले जाने तक, मैं राजा की निधि का रक्षक हूँ। नगर उजड़ गया? वे पेड़ की जड़े हैं? तब तो झुककर इन रत्नों को ले लो तो देखूँ! दुनियाँ में इन से बढ़कर क़ीमती रत्न और कहीं नहीं हैं। साँप की जीभवाले मनुष्य! तुम अपने रास्ते सकुशल वापस जा सको तो छोटे छोटे राजा तुम्हारे गुलाम बन जायेंगे।"

"फिर रास्ता भूल रहे हैं। नागपितामह! ले जाने के लिए तो यहाँ कुछ नहीं दीखता!" मौवली ने कहा।

"सूर्य और चन्द्रमा को गवाही बनाकर, तीन करोड़ देवताओं की गवाही पर कहता हूँ कि इस लड़के पर मौत का पागलपन सवार है! देखो, तुम्हारे आँख बंद करने के पहले तुम्हें वह चीज दिखाऊँगा, जिसे किसी मनुष्य ने नहीं देखा है।" सफ़ेद फन ने कहा।
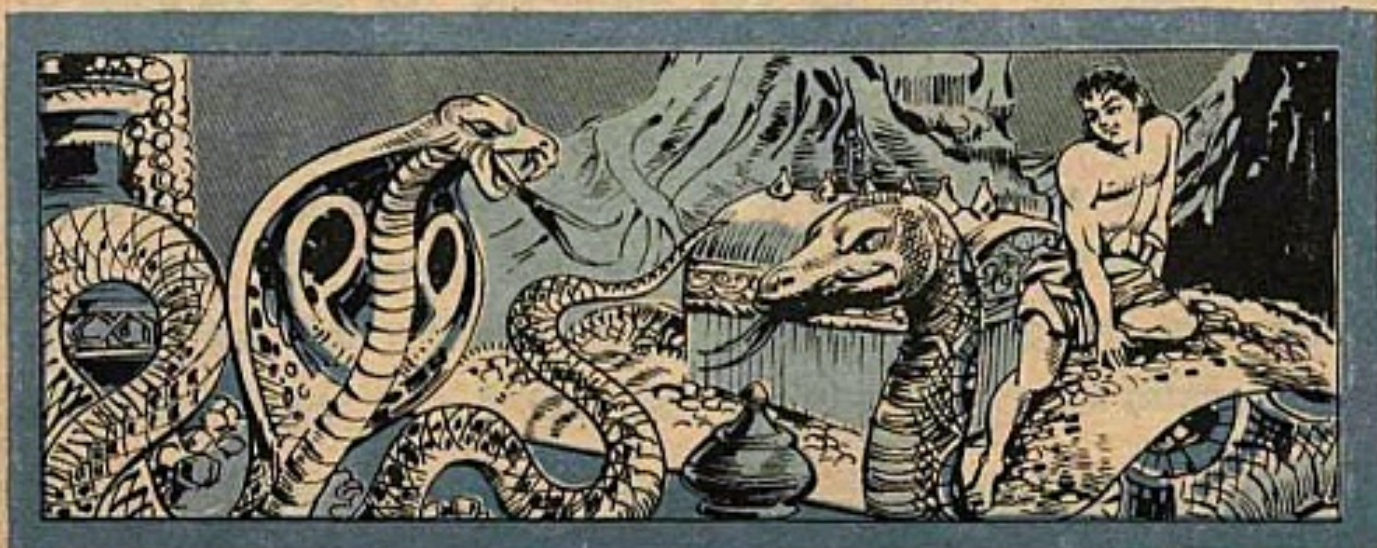
# ७७. अंगर्स दुर्ग

इसे अंगर्स (फ्रान्स) के पास नौवें लूई ने बनवाया। इनको संत लूई कहते हैं (१३ वीं शताब्दी)।
इस दुर्ग में १७ बुर्ज हैं। आकाश को छूनेवाले इस दुर्ग को ध्वस्त करने का तीसरी हेन्री ने आदेश दिया था। लेकिन अंगर्स का गवर्नर अपनी असावधानी से इसे बचा सका।

Photo by T. S. Satyan
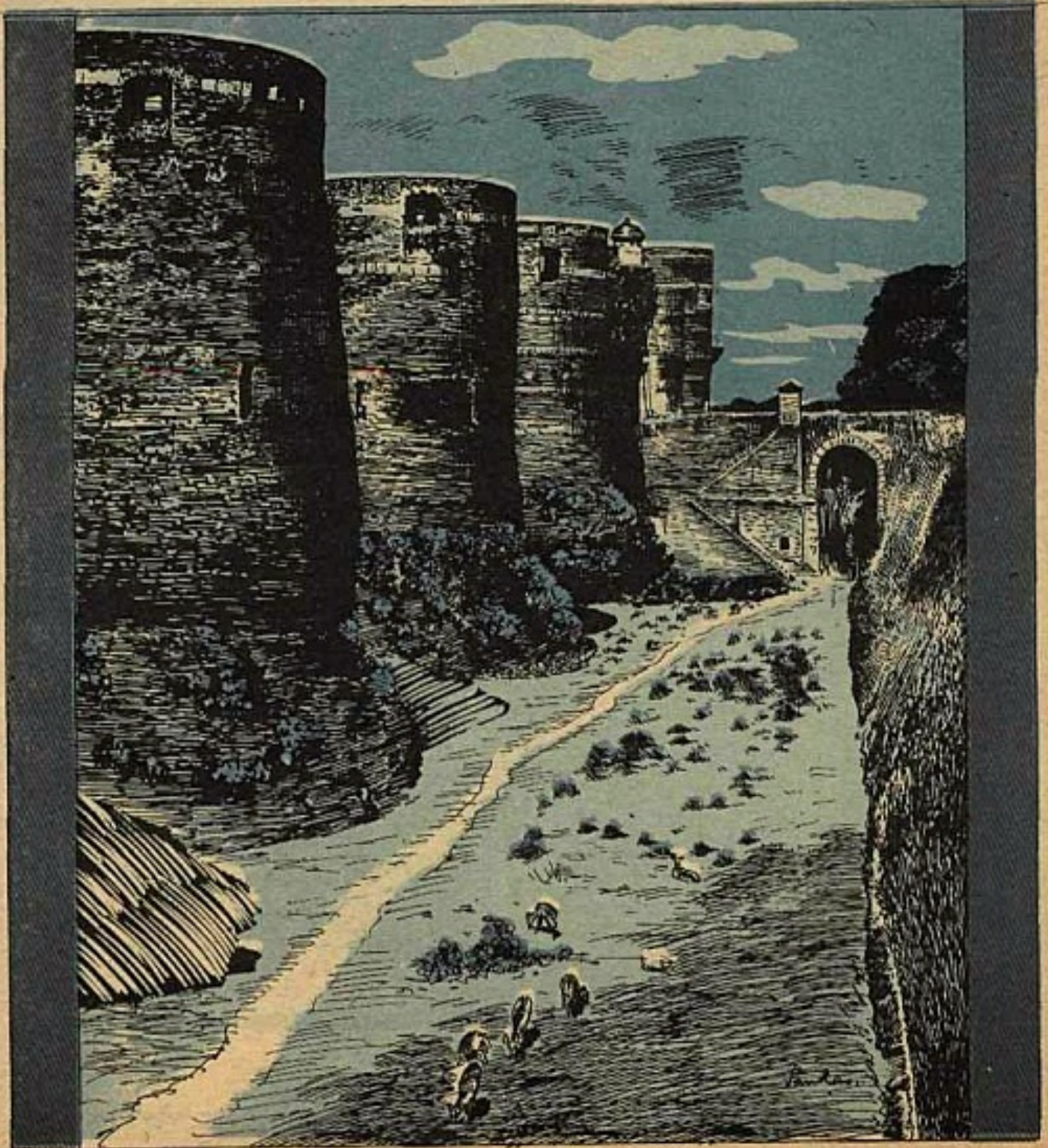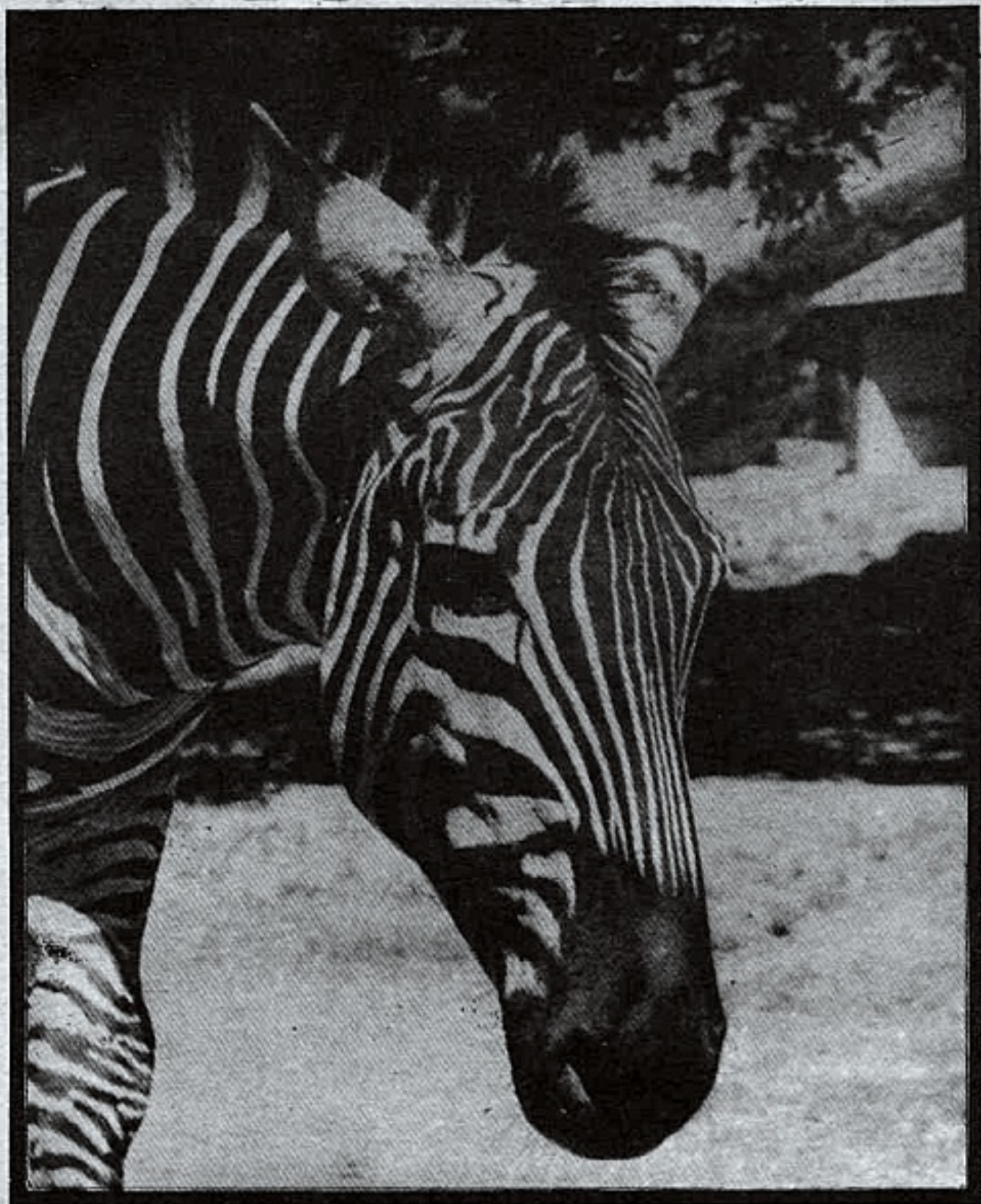
पुरस्कृत परिचयोक्ति

सेवक हूँ, मैं अपने मालिक का!

प्रेषिका : कु. स्नेहलता-जबलपुर

Photo by Ravindra Kumar Paul
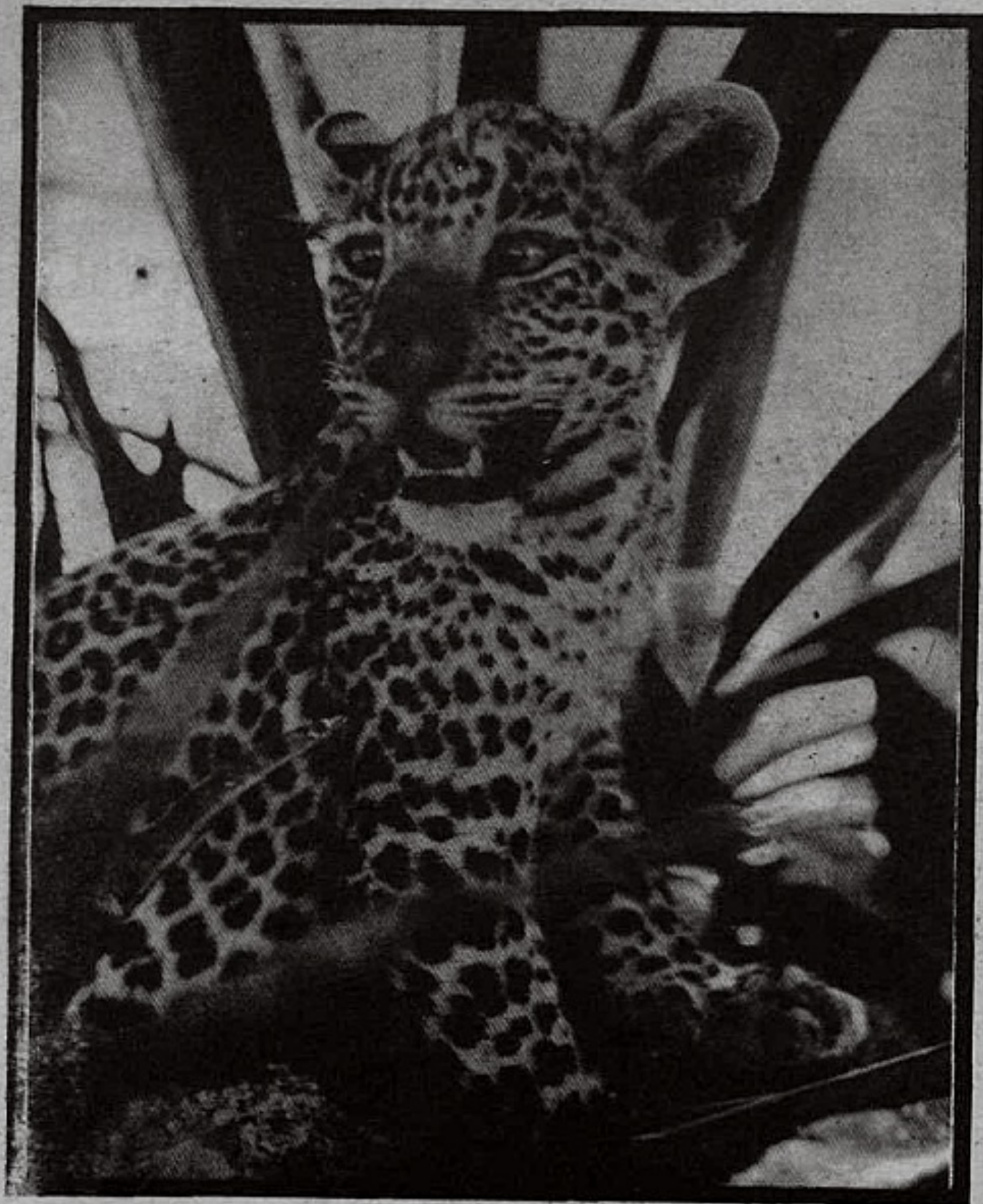
पुरस्कृत परिचयोक्ति

मालिक हूँ, मैं इस जंगल का!!

प्रेषिका : कु. स्नेहलता-जबलपूर

# फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

जुलाई १९६८ :: पारितोषिक १०)

## कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें !

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिखकर निम्नलिखित पते पर तारीख ७ मई १९६८ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन,
वड़पलनी, मद्रास-२६

## मई – प्रतियोगिता – फल

मई के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं।

इनकी प्रेषिका को १० रुपये का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो: सेवक हूँ, मैं अपने मालिक का !

दूसरा फ़ोटो: मालिक हूँ, मैं इस जंगल का !!

प्रेषिका: कु. स्नेहलता उदासी,
१४८६, नेपियर टाउन, जबलपूर (म.प्र.)

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'